प्रकाशक
काकासाहब कालेलकर
काकावाडी, वर्धा

पहली बार : १५००
क़ीमत : अेक रुपया

मुद्रक
अमृतलाल नाणावटी
हिन्दुस्तानी छापघर, वर्धा

ॐ ‌ م ‌ الله

भगवान के श्रीचरणों में धरके
हर गोपी-हृदय को
सप्रेम प्रसाद-भेंट

रैहाना तैयबजी

गोपी हृदय



पहिला दिन

अच्छा। तो यह है गोकुल।

गोकुल ! और मैं, शर्मिला गोकुलमें हूँ ! क्या लीला है !

कल मैं अेक शानदार महल में रहती थी, और आज अिस घास फूस की कुटिया में बैठी हूँ ! छत में [1]सूराख़ पड़े हैं। अुनमें से निथरती किरनें मेरी जलती आँखों में चुभ रही हैं....कल ही नाज़-नख़रों में पली मैं अेक स्वच्छंद राजकुमारी थी: आज अेक गौली की ग्वालन हूँ ! क्या तमाशा है ! याद आता है—अेक रोज़ पिताजी ने गुरुजी से पूछा, "महाराज, जीवन क्या है ?" जवाब मिला "जी के जान लो !" दीन होकर पिताजीने याचना की "कृपानाथ, मुझे टालते क्यों हैं ? मैं जिग्यासू हूँ।" तब गुरुजी ने हँसकर फ़रमाया, "तो सुन लो, बेटा। जीवन है—बस क्या से क्या हो जाना !" सच है ! सच है ! मैं भी ज़ीकर यही सीख रही हूँ....माताजी पिताजी कहाँ होंगे ? मदांध राजा के क़हर से छिपते हुअे—अपनी पुत्री को अुसके अुद्धारक के हाथों सौंपकर........मेरी याद करते होंगे ? ज़ुरूर ! पर अब चैन से होंगे। जानते हैं ना, कि मैं सलामत हूँ ? और अिस [2]पुरख़तर ज़माने में यही क्या कम ग़नीमत है ?....कहाँ छिपे होंगे वे ? 'अुन' को ख़बर है,

१ सूराख़=छिद्र २ पुरख़तर=भयपूर्ण

पर बताअें तब ! वे तो बस यही कहकर मुझ को टाल देते हैं : "आने भी दो ! तुम स्त्रियों की ज़बानों से तो, बाबा, हमने हाथ जोड़े ! नींद में भी चलती रहती हैं !" पर अितना आश्वासन ज़रूर दिया : "डरो नहीं, वे बिल्कुल सुरक्षित हैं ।" मुझे समाधान हुआ । मेरा दिल गवाही देता है, 'वे' मुझको कभी धोका नहीं दे सकते ।....कल ही—कल ! या हज़ार युग, या हज़ार कल्प पहले ?—मेरा [1]जिस्म कमख़ाब में [2]मुलायम रेशम में लिपटा हुआ था, और आज अेक ही भद्दा सा लाल चिंदा अुसकी लाज ढँके हुअे है ! (पर 'अुन' को यह रंग भाता है ।) और कल अिसी समय में रंगमहल के [3]गुल्ज़ारों में अपनी हँसती खेलती सहेलियों के संग फूल चुन रही थीं, और कअी प्रेमल और चतुर दासियाँ मेरे अिशारे की गुलाम बनी हुअी थीं । आज तो मैं आप ही दासी बन बैठी हूँ—अेक [4]अदना गौली और अुसके परिवार की ! ! (अभी मुझको और ग्वालिनों के साथ 'अुन' की गौअें दुहने जाना होगा....) अरे यह हो क्या गया ? मैं ? शर्मिला ? मशहूर सरदार—(चुप ! अुस पूज्य-प्रिय नाम को ज़बान पर तो क्या, मन में भी न लाना)—सरदार की लाड़ली पुत्री, और "दासी" ? "ग्वालिन" ? हो नहीं सकता ! मैं [5]ख़्वाब देख रही हूँ !.... मगर यह कुटिया तो स्वप्न नहीं ! और मेरे जिस्म पर का यह लाल चिन्दा भी स्वप्न नहीं । और यह सख़्त ज़मीन, जिसपर रातभर मैं कराहती रही, यह तो अवश्य ही स्वप्न नहीं ! ! ....कल ही—मगर अब भाड़ में जाय 'कल' ! हमारे गुरुजीने सच ही फ़रमाया था : "राजन् ! भूत और भविष्य के स्वप्नों में न फँसिये । 'गअी

---

१ जिस्म–शरीर २ मुलायम–नरम ३ गुल्ज़ार–बाग़, पुष्प वटिका
४ अदना=सामान्य, ५ ख़्वाब=स्वप्न

'कल' गअी, और 'आती कल' किसने देखी है ? जो है सो 'आज' है, और बस !"

*　　　　*　　　　*

यह गोकुल है प्यारी जगह, अिसमें शक नहीं। और यह गोपराज भी बड़े [1]नेक हैं, जिन्होंने मेरी जान बचाकर अुसे अपनी ही बना ली। अिस क़दर मेहेरबान !—क्या कहूँ !....और अुनके पिताश्री भी मुझ पै कृपादृष्टि रखते हैं। मेरी सास—हाँ, अुनकी बात कुछ और है ! अब तक तो मैं अुनके लिये ग़ैर ही हूँ ना ? वह अपने बेटे पर वारी जाती हैं। डरती हैं (और यह स्वाभाविक ही है): "वहू घरमें आ गअी: अब मेरा लाल मेरा कहाँ रहेगा ?" तो फिर वह बेचारी मुझसे कैसे प्यार करें ? और "अुन" की बहनें !—राम राम ! अुनकी बात तो जाने ही दूँ ! गुरुजी क्या कहा करते थे ? "औरोंके दोष न देख। देख लिये, या मनमें आ गये, तो अुन्हें दयार्द्र ख़ामोशी से ढँक ले।" रे गुरुजी ! गया वह ज़माना ! अब अिस जनम में तो आपके सुन्दर ज्ञानोपदेश, आपकी प्रेमपूर्ण नसीहतें, अिन कानों को कभी भी पावन न कर सकेंगी ! ख़ैर ! भगवत् कृपा से जितना सुन पाअी, अुसी पर अमल करती रहूँ। अिस तरह शायद कुछ तो शांति मिल जाय। वरना अब तो सीना फटा जाता है, आँखें अिन अुबलते आँसुओं की अुमड़ से जल गयीं....ख़बरदार, शर्मिला, ख़बरदार ! यह क्या कर रही है ? यों हिम्मत हारते शर्म नहीं आती ? गुरुजी का क़ौल याद कर, और फ़ौरन् स्वस्थ हो जा !

---

१ नेक=सज्जन

"जीवन-रणमें अखण्ड विजयी शूर अुसीको जान,
जो अंधकार में शांत चित्त से धरे प्रकाश का ध्यान।"

मैं शूर हूँ। ज़ुरूर मैं शूर हूँ! शौर्य मेरी [1]गुठ्ठी में है: मेरे अुन पराक्रमी योद्धा बुज़ुर्गों का प्रसाद, जिनके ज्वलंत नामों से संसार अब तक भी प्रभावित और प्रकाशित हो रहा है। क्या पता? शायद गोकुल में मेरे लिये कोअी भेंट छिपी पड़ी हो? गुरुजी तो हर वक़्त अटल विश्वास के साथ कहा करते थे: "प्रेमवत्सल प्रभु अेक हाथ से लेते है अनेक हाथों से देने ही के लिये।" सावधान, शर्मिला! चल, प्रकाश का ध्यान धर........

* * *

अहो! कितना अच्छा है यह गोकुल? यहां की चिड़ियाँ भी कैसा मीठा बोलती हैं? अैसा पंखी-गान शहरमें तो कभी सुनना नसीब नहीं होता। वहाँ तो क़ैद ही क़ैद है—क्या अिन्साऩ के लिये, क्या प्राणियों के लिये। अिस स्वच्छ, आज़ाद हवा में अिन नन्ही सी जानों की मंजुल कला निरंकुश विकसती रहती है....यह बोली फिर से! "पी पी पी!" और "पियू! पियू! पियू!" अै सुरीली पगलियो, भला तुम "पी" और "पियू" का क्या जानो? अै लो! अेक छोटी सी [2]गुस्ताख़ अुस टहनी पै झूम झूम कर, अपने चमकीले रंगीन पर फुला

१ गुट्टी=मूल स्वभाव २ गुस्ताख़=बेअदब, धृष्ट

फुला कर, मेरी ओर आंखें मिचका रही है, गोय पूछती हो, "शर्मिला देवी, अैंठती क्या हैं? क़ल आप ही क्या जानती थीं, यह तो वताअिये?" चल चुप कर, [1]वदतमीज़! जानती भी है मैं कौन हूँ? चल तो सही शहर में फिर देख तुझे पिंजरे में पूरकर तेरी कैसी गत वनाती हूँ! वड़ी आयी है मेरी ठठोलियाँ अुड़ाने!....लो, हँस कर अुड़ गयी.... मगर अुसकी वात तो सच है, भअी! कल ही– अरे वस कल ही!–मैं क्या जानती थी "पी" और "पियू" का? और आज—आऽऽऽज?— हाँ!—आज कुछ जानती हूँ सही!....वृक्षों ने अिस मस्ताना हवा में क्या झूमाझूम मचाअी है! अरे ज़रा कहो तो सही, यह किसकी याद तुम्हें अिस तरह वेखुद वना रही है? किस ग़ैवी प्रीतम के दरवार में तुम अैसा शानदार नृत्य कर रहे हो? अहाहा! क्या लहर है! भअी वाह!....और हाय रे, मधुमालती! अुन क़द्दावर पेड़ों से कैसी लिपटती चली जा रही है! री! तेरी हरी हरी टहनियाँ किसी प्रेमवश [2]नाज़नीन् की नाजुक वाँहों की सी हैं, जो अपने [3]तवाना स्वामी के गले का हार वनी हुअी हो। तेरी सव्ज़ रगों में रस नहीं, [4]ख़ालिस प्रेम की सरिताअें वह रही हैं! (कुछ तो सँभल, ओ निर्लज्ज वल्लरी!....) और यह मस्त पपीहा, अै मूक प्रेमियो! तुम्हारा चारण वनकर किस सुरीले अुमंग से तुम्हारी प्रेम-कहानी गा रहा है! वलिहारी!....ले, पवन, तू आया? सुस्वागतम्! मगर हे स्वच्छंद-विहारी! अै कुदरत के लाड़ले वालक

---

१ वदतमीज़=असभ्य २ नाज़नीन्=सुंदरी ३ तवाना=वलवान, मज़बूत
४ ख़ालिस=शुद्ध, जिसमें किसी और चीज़ का मिश्रण न हो।

अिन बेचारे फूलों को न छेड़। देखता नहीं यह किस अेकाग्रता से अपने आराध्य देव, श्री सूर्यनारायण, का ध्यान धर रहे हैं? ओहो! फूलों को तो तेरी छेड़छाड़ भा गयी! नाचने लगे! खिल-खिलाकर हँसने लगे! जा तब। जी में आय सो कर! मैं तुझे नहीं रोकनेकी....अरे, यह प्यारे प्यारे पुष्प! कितने सुंदर हो तुम? तुम्हें भगवान ने कैसे बनाया? कितनी नाज़ुक होंगी अुनकी अँगुलियाँ? मानों नन्हीं नन्हीं, हलकी फुलकी बदलियों को अरुण के रंग-कुण्डोंमें डुबो कर, फिर अुन्हीं से तुम्हारी पँखरियाँ बना ली हों!....कितने निर्मल हो तुम? किसी तरुण माता की रंग-रस-भीनी संकल्प-तरंगों के से हो, जो अपने नवजात शिशु की मंद मुसुकान आनंद-मस्त आंखों से निहार रही हो....वाक़अी, यह गोकुल बड़ा ही मन मोहक है!....मगर यह क्या? क्या निसर्ग-मात्र अिन्सान् के हृदय का आअीना ही है?....नये नये विचारों के वेग से सर चकराने लगा....

* * *

अैहै! मेरा वस्त्र फट गया! अब क्या करूँ? सैंकड़ों क़ीमती, अुम्दा वस्त्र लापरवाही से फैंक देनेवाली मैं, अिस लाल चिन्देके फटने से क्यों अुदास हो रही हूँ? अिस ख़याल से, कि 'अुन' को दर्द होगा? क्या तमाशा है! कल तक तो अुनकी हस्ती ही से बेख़बर थी, और आज अुनके ज़रा-से रंजीदा होनेका विचार मात्र मुझे [1]बेताब किये देता है! स्त्री-हृदय भी कुछ अजीब चीज़ है! आज तड़के ही मैं [2]दुज़ानू हो अुस झरने के किनारे बैठी थी जो दूर वाले कुंजमें से बहकर

---

१. बेताब=अस्वस्थ २ दुज़ानू=घुटनोंपर

जाता है। 'वे' अचानक वहाँ आ गये। मेरे बाल खुले पड़े थे, माथेकी बिन्दिया अभी ताज़ी ही थी। कहने लगे, "बाले, तू स्त्री है या देवी? या अेक कोमल लहराती लता? तू पुष्प-कली की सी है, और अिस धारा जैसी, और अुस नदी जैसी! री, न जाने तू कैसी है, कैसी नहीं है! कि [1]आलम भरका सौंदर्य तुझमें समाया नज़र आता है।" अिस अनोखी वाणी को सुनकर मेरे गाल [2]सुर्ख़ हो गये, और सर और भी झुक गया। तब वे फिरसे बड़ी नर्म, गंभीर, और कुछ अजब [3]पुरसुरूर आवाज़ से बोले, "और तेरे माथे का तिलक, मानो चंपअी आकाश में लाल सूर्य अुगा हो! और तेरे [4]अब्रू! गोया रजनी की [5]सियाह मियानों में ढ़के दो अुलट बीज-चंद्र!....और तेरा [6]दहाना तो—रे रे, सितमगर! बस मदन का [7]क़ातिल धनुष ही है, जिस से वह मुझ ग़रीब के चैन का ख़ून कर रहा है!" अैसे शब्द अिन कानों ने कभी स्वप्नमें भी सुने न थे! मैं स्तब्ध, गुमसुम हो गयी: अेक साथ आनंदित भी हुअी, और घबरायी भी—न मालूम कैसे?....ज़रा होश सँभले, तो पलकों की आड़में से मैंने अेक तिरछी निगाह 'अुन' पे डाली, और अुस देव-पुरुषको अेक अबला की बेबसी के सामने अिस तरह दीन और लाचार बना देखकर मुझे अपने छिपे बल का सहसा भान हुआ। और मैं जान गयी, कि मेरी निर्बलता ही मेरा सच्चा बल है। और नारी-स्वभावके गुप्त और गहन द्वन्द्वों से विवश होकर मैंने मुस्कुरा दिया। बस! न मालूम

---

१ आलम=विश्व २ सुर्ख़=लाल ३ पुरसुरूर=आनंदभरी ४ अब्रू=भौंह
५ सियाह=काली ६ दहाना=मुँह, होंठ ७ क़ातिल=घातकी

अुन्हें क्या हो गया ! अपनी आंखों पे हाथ रखकर पुकार अुठे : "रे, मैं हारा ! मैं हारा ! अब तो दया करेगी या नहीं ?" मैं तो कुछ भी न समझी ! पूछने ही को थी, "क्या हुआ, महाराज ?" कि अितनेमें मेरी छोटी ननँद मुझको बुलाने आ गयी........

हाँ। अेक बात भूली हूँ। मैंने अेक बार फिर कर नहर में देखा, कि मेरी मांग सीधी तो पड़ी है ? 'वे' मुस्कुरा कर कहते हैं, "मेरी आंखें साफ़ है, अिन्हींको अपनी आरसी बनाकर पावन क्यों न करो ?" पर जब मैं अुनकी आंखों में देखने गयी, तो—न देख सकी—भगवान जाने क्यों ?

* * *

मगर अब अिस बकवादको बंद करूँ, वरना 'अुन' का कहना सिद्ध हो जायगा, कि स्त्रियोंकी ज़बानें "बकवाद-योगी" हुआ करती हैं ! अब तो बेचारे भूखे हुअे होंगे। सासूजीने मुझ से कहा भी था, "देख, अुसे बरवक़्त छाछ दे आअियो, बेटी, भूलियो मत !" मेरी सासूजी मुझे बड़ी प्यारी लगती हैं ! वे 'अुन' पर बिलकुल फ़िदा हैं........

मेरी ननँदोंने यह बरतन कैसे धोये हैं ! अूँह ! 'अुन' का लोटा तो मैं आप ही माँज लूँगी, तब फिर अुसमें छाछ भरी जायगी.... गोकुल है बड़ा मज़ेदार, सच !....आह !....माताजी, पिताजी, बस आप जो यहाँ होते !........

अुस तुलसी के बिरवे को भी जल सींचना है, जिसकी पत्तियाँ सवेरे ही 'अुन्हों' ने पूजन के लिये चुनी थीं........

दूसरे रोज़

सुहावनी प्रभात में श्री जमुनाजी मानों सियाह [1]बिल्लौर का प्रवाह बन जाती हैं, और शून्य गगन अेक सुफ़ीद बिल्लौर की सुन्दर फ़र्शी, जिस पर कभी तो अेक हल्का फुल्का, बारीक, रंगबिरंगी धुंध बिछा हुआ होता है, और कभी ताज़े ताज़े रंगों की [2]नफ़ीस छटाअें लहर में आकर थिरकती नज़र आती हैं। और धरती अेक गंभीर सन्नाटे में पड़ी होती है, गोया अुसकी हर चीज़ बंदगी में [3]ग़र्क़ हो गअी हो। और पूरब के सुनहरी द्वार खुलते ही चोंचाल पवन अपनी शैत्य-सेना समेत पृथवी पर धावा करता है, और ठंडी-ठंडी, ताज़ी ताज़ी [4]सबा की लहर पर लहर, नाचती कूदती, श्री जमुनाजी के चिलकते बालों से अठखेलियाँ करती अिधरको चली आती है, और सारे ही वृंदावन में ठंडक का संचार कर देती है। यह हवायें क्या हैं, यह तो किसी भव्य देवनगरी के मार्मिक, मनोहर पैग़ाम हैं!........

तड़के ही तड़के मुझको अपनी सखियों के संग घाट पै जाना बड़ा ही भाया, और स्नान में, गान में, गपशप और हँसी-[5]मज़ाक़में बड़ा ही [6]लुत्फ़ आया। हम [7]अेकमेक पर जल अुड़ाती रहीं, और अेकमेक के बाल भिगोती रहीं, और चंद सखियाँ साथ मिलकर बड़े ही भाव से यह भजन गाने लगीं, जिसके प्यारे शब्द मेरे मन को वश करके मेरे हृदय पर नक़्श हो गये।

---

१ बिल्लौर=स्फटिक २ नफ़ीस=पवित्र-नाज़ुक ३ ग़र्क़=डूबी ४ सबा=पूरबका प्रात:समीर ५ मज़ाक़=विनोद ६ लुत्फ़=मज़ा ७ अेकमेक=अेकदूसरे

अेक सखी ने आरंभ किया :

"नंदलालन में मेरे प्राण बसें। मेरे प्राणन में नंदलाल !
रे, मेरे प्राणनमें नंदलाल !" ॥

दूसरीने अंतरा जोड़ दिया :
"अगन में ज्यों चिनगारी अुपजे, चिनगारी में अगनी दहके।
पुष्प-पराग में वायु व्यापै, वायु में सुरभि रसाल ॥"
जोशमें आकर सब साथ गा अुठीं :
"यों ही प्राणन में नंदलाल" !

गोपियाँ खामोश हो गयीं : किंतु वह मंजुल ध्वनि जमुना की मंद लहरोंके साथ बहता बहता दूर दूर की टेकरियों से जा टकराया, और वहाँ मानों आतुर निसर्ग की जानो जिगर में प्रवेश करके अति मधुर गुंजार करने लगा। सारी गोपियाँ निश्चल हो गयी थीं, गोया "नंदलाल" को दिल की गहराअियों में अुतारकर अंदर ही अंदर अुनका साक्षात्कार कर रही हों....मैं विचारमग्न हो गयी : "यह 'नंदलालन' कौन होंगे, जिनकी स्मृति मात्र अिन चंचल गोपियों को—अरे गोपियों को ही क्या, सारे [1]आलम को !—अिस तरह शांत, निस्तब्ध बना दे सकती है ? यह नाम मैंने तो कभी सुना नहीं ? पर—[2]तअज्जुब ! अुसके अुच्चारण से मैं भी फड़क और सुलग अुठी हूँ !"

१ आलम=विश्व २ तअज्जुब=आश्चर्य

अितने में फिर अेक सुरीली आवाज़ने मंत्रमुग्ध सृष्टिको चौकन्ना कर दिया :

"तारों की ज्योत में जैसे मृदुता, चंद्र के तेज में ज्यों शीतलता, ।
ज्वलंत सूर्य में अुग्र तपन ज्यों, अरुण में लाल गुलाल ॥"–

और फिर वही [1]बुलंद, हुलसित ध्वनि :

"यों ही प्राणन में नंदलाल !"

मैं रोमांचित हो अुठी । दिल को कोअी अजीब, गंभीर, साथ ही अतिरुचिर व्यथा बेचैन करने लगी । मैं गुमसुम सी होने लगी । अुसी दम अेक सहेली अुद्‌गारी, "हरि हरि !" यह सुनते ही चंद बेखुद होकर रोने लगीं ! आश्चर्य ! अिधर यह तमाशा चल रहा था, अुधर अेक गोपी "गोपा ऽ ऽ ल !" चिल्लाकर बेहोश सी हो गयी । तब अेक छोटी सी, मीठी सी, शर्मीली गोपी को शौर्य चढ़ा, गोया, और वह [2]जज़बे में आ कर मुक्त कंठसे गाने लगी :

"प्रिया की नैन में ज्यों प्रीतम-छब,
प्रिया की छब प्रीतम-नैनन में ।
दीनदयाल में बसें सदा हम,
हम में दीनदयाल ॥ रे, मेरे प्राणन में नंदलाल !" ॥

---

१ बुलंद=अूँची २ जज़बे=आवेश

अुसने अभी पूरा खत्म भी न किया था कि अेक सखी तड़प कर पुकार अुठी, "हाय ! हाय ! यह प्यासी आँखें अुनके दर्शनों से कब तृप्त होंगी ?" दूसरी बोली, "मेरे कान तो गोया अुनकी मुरली-धुन की प्रतीक्षा में सदा खड़े के खड़े ही रहते हैं !" अेक तीसरी ने निश्वास छोड़ा : "तुम आँख कान को रो रही हो, और मेरा तो यहाँ दिल ही चूरचूर हो रहा है ! कब आवेंगे वे ?" तब अेक चौथी ने आँसू पोंछते हुअे जवाब दिया, "सच है, बहिन ! अुनके बिना यह जीवन जीवन ही कहाँ है ? ज़िन्दा मौत है, और बस।" यह सुन कर अेक गोपी प्रेम से बोली, "पर अुनकी याद तो हम से कोअी नहीं छीन सकता ना ? बस, वही हमारा भोजन, वही हमारा आनंद, वही हमारे तड़पते हुअे प्राणों का आराम है। क्यों, सही बात है ना ?" और अेक सखी लंबे लंबे अुसाँसे भर कर अपना सीना पीटने लगी। अब यहाँ अेक कौतुक हुआ। अेक गोपी, जो अब तक खामोशी और अेकाग्रता के साथ अपने वस्त्र धो धो कर निचोर रही थी, अब फिरी, और कुछ चिढ़ से बोली, "ठीक है ! ठीक है ! अुस नटखट को कौन पहुँचे ? न हों, तो आफ़त ! और हों—तब तो और भी आफ़त ! बस आफ़त पर आफ़त ! जाय भाड़में यह जीवन ! मैं तो अब अुस से अूब गअी !" अुसके शब्दों ने गोपियों में अेक खलबली मचा दी। सारी की सारी अेक साथ चीख अुठीं : "क्या कहा ? अुनका होना 'आ-फ़त' ? !! री, ज़रा होश संभाल ! सीने में दिल है या पत्थर ?" बस वह गुल मचा, वह गुल मचा, कि मैं पूछ ही न पाअी आखिर यह ज़िक्र है किसका ? ("अुन" से पूछ लूँगी।) तब वह बिफरी हुअी गोपी नागन की तरह बल खाती

हम पे फिरी, और गागर माथे पे थाम कर, हाथके अिशारे से सभों को खामोश करके, झुंझलाकर बोली :

"हाँ, बेशक ! अुनका न होना तो आफ़त है ही, पर होना भी क्या कम आफ़त है? री मुझ पे घुरकती क्या हो? सच कहते हुअे मैं किसीसे न डरूँगी ! तुम सभी अिस घड़ी तो बड़ी अनजान सी बन रही हो, पर मेरे घर का हाल कौन नहीं जानता? तुम दिनरात 'कृष्ण भक्ति,' 'कृष्ण भक्ति' के गुणगान अलापती रहती हो, पर मैंने तो हाथ जोड़े, बाबा, तुम्हारी अिस 'कृष्ण भक्ति' से ! अेक तरफ़ मेरे पतिदेव मुँह फुलाये फिरते हैं; 'पागल !' 'सिड़न !' 'बेवफ़ा !' 'कुल-कलंकिनी !' के सिवा कुछ बात ही नहीं करते। यह तो खैर, सह भी लूँ : पर अब तो अुन्होंने बस हद कर दी है ! मुझे भ्रष्ट ठहराकर अब तो मेरा पकाया तक नहीं छूते ! ज़रा सोचो तो ! ...." (गोपियाँ सनसना सी गअीं) "अच्छा। अब सुनो हमारी सासूजी का हाल। कअी-कअी दिन बीत जाते हैं, और हमारे बीचमें अेक शब्द नहीं ! वह अलग, मैं टलग। कभी चूक से मुझ पे आंख पड़ गअी, तो अिस तरह मुँह बिगाड़ लेती हैं, मानों नाक को कोअी बदबू छू गअी हो! और मेरी ननँदों का तो बस—कुछ न पूछो ! दिन रात कोस, कोस, और गालियों की बौछार ! क्या कहूँ मैं कैसी तंग आगयी हूँ, कि जीना अेक [1] अज़ाब हो गया है! अब तो सच कहती हूँ—जी यही चाहता है कि जमुना में फाँदकर डूब मरूँ—और या फिर" (दाँत पीसकर) "अुस कृष्ण ही को डुबा मारूँ !"

---

१ अज़ाब=मुसीबत

अितना कह कर वह ठुमक ठुमक चल दी, अेक हाथ कमर पर, दूसरा माथे के गागर को सम्हाले हुअे। और अुसका सारा ही लचकीला शरीर गोया क्रोध और निराशा की ज़िन्दा तस्वीर बना हुआ था।

मेरी सखियां तो दिङ्मूढ़ होकर अुसकी पीठ तकती ही रह गअीं! आख़िर अेकने बमुश्किल अपना मौन भंग किया, और खिल-खिलाकर हँस पड़ी। "शुक्र है, बाबा, कि सब मर्द अुस बेचारी बदनसीब के 'पतिदेव' जैसे नहीं होते!" "'पतिदेव'! हुँह! मूढ़ों का पितामह कहीं का! अरे कृष्णजी को अपना [1]रक़ीब मान बैठा है!! ज़रा अक़्ल तो देखो अुसकी?" अिसपर सारी गोपियोंने ज़ोर का क़हक़हा लगाया, और मुझे तो अैसी चटपटी लगी कि यह 'कृष्ण' होंगे कौन? कि पूछने तक का होश न रहा! 'कृष्ण'। 'हरि'। 'नंदलाल'—यह सब हैं कौन, आख़िर?....क्या प्यारा नाम है—'कृष्ण'!....कौन होंगे वे?

अेक हफ़्ता बाद

गोकुल आअे मुझे आठ रोज़ हो भी गये! ओफ़ोह! कैसा आश्चर्य? कभी लगता है मैं कल ही आअी, और कभी, कि मैं कभी कहीं और थी ही नहीं! हर क्षण नयापन, हर पल पुनर्जन्म—और साथ ही, अेक हमेशगी, अेक गहरे परिचयका सुखद [2]अिहसास—कैसी ख़्वाब हो गअी वह पुरानी ज़िंदगी!....क्या [3]वाक़अी मैं—अुस शहर—में रही थी? क्या वाक़अी मैं राजकन्या थी?....ना ना! स्वप्न देखा मैंने!

---

१ रक़ीब=हरीफ़, प्रतिस्पर्द्धी २ अिहसास=लगना ३ वाक़अी=सचमुच

कोशिश करके जब याद करती हूँ असके ठाठ विलास, असकी [1]शानो-शौकत, असकी निकम्मी दौड़-धूप और पोकल खुशियाँ, तो बेअख़्तियार हँसी आ जाती है क्या नाटक ! क्या बचपना !....यह घमण्ड है ? नहीं। सिर्फ़—मैं बदली हूँ....वृंदावन !—आह!—ओ जादूभरा जंगल ! ओ जादूभरी हवा ! ओ जादूभरा जीवन ! अिसके मोह-जाल में मैं तो बस फँसती ही चली जाती हूँ ! जाने क्या बात है अिसमें, कि यह अिन्सान की [2]रूह पकड़ लेता है : बेमालूम दिल में घुस कर, असे अपनी आरसी बना लेता है। अंतर-जीवन के गुप्त तारों को नज़ाकत से छेड़कर, अनमें से अपने ही मस्ताने, रंगीले, किंतु अति पवित्र राग निकालने लगता है। शुरू दिनों मैं घबराती रही : "हाय, अिस 'गँवारिस्थान' में मुझ राजकुमारी का कैसे गुज़र होगा ? अैशो आराम, रंग-रस-राग में सनी हुअी मैं, यह झाड़-झूड़, यह माँज-पोंछ, यह आये दिन का नीरस और थकाअू [3]वैतरा कैसे बरदाश्त कर सकूंगी ?" मगर यह सारी चिंताअें फ़ुज़ूलकी थीं। मुझे तो यह सादी सीधी ज़िन्दगी बहुत ही भा गअी है ! प्रातःकाल का जमुना-स्नान, अिन मंजे हुअे दही-दूध के बरतनों की चमक-दमक, गौवों का गूढ़ हंभारव, अनकी घंटियों के 'टि-न-न-लिंग ! टि-न-न-लिंग !' के साथ हमारी पायलियों की मृदु झंकार, साफ़ सुथरी दोहनियों में बहते हुअे [4]अूने अूने धवल दूध की सुगंध—अरे यह सब तो रहा, मुझे तो ताज़ी, रसीली घास की खुशबू से महकता गौवों का श्वास तक प्यारा प्यारा लगता है ! अुन्मत्त हवाओं के थपेड़ों से लहराती

---

१ शानोशौकत=प्रतिष्ठा-वैभव २ रूह=आत्मा ३ वैतरा=बेगार
४ अूने=कुनकुने

अिन 'वन-सब्ज़ियों की दिलफ़रेब धूप-छाँव, फूलों की न्यारी न्यारी मस्त सुवासें, पंखियों के निसर्ग-मधुर सुरोंके आह्लादक फ़व्वारे, मंद मंद झूमते तरुवरों की कंपित टहनियों में निश्वास छोड़ते पवन का 'सांअीं ! सांअीं !'—अिन सब से मेरे चंचल हृदय को अेक गूढ़ शांति, मेरे अतृप्त आत्मा को कुछ अवर्णनीय संतोष मिल जाता है। और रात को वृंदावन की निगहबानी करते, झिलमिलती ज़बानों से अखण्ड जाप जपते वह तेजस्वी सितारे; वह गूढ़, गंभीर आकाश, आनंदमस्त और अलिप्त, नर्त्तक नक्षत्रों का आधार, अेक प्रचण्ड महायोगी, जिसके असीम सीने की गहराअियों में न जाने क्या क्या, और कितने कितने दिव्य [2]राज़ छिपे पड़े होंगे; और निशा-विहारी प्राणियों का गुंजरित 'ओम् ! ओंम्म्म्म्म्म् !'-कार; और अखिल विश्व पर छाअी हुअी अेक समृद्ध मौन-घटा—यह सारा मुझे नखशिखांत अेक पावन हर्ष, अेक पूजामय आश्चर्य से भर देता है, और जी यही चाहता है बस [3]अिबादत करती रहूँ। अुस वक़्त रोने को जी चाहता है, बोलने को कभी नहीं। वृंदावन की मार्मिक ख़मोशियां मेरे अंतःस्थल में प्रविष्ट होकर, अुसे भी किसी अजीब ख़मोशी में ग़र्क़ कर देती हैं। भगवान जानें क्या बात है अिस वृंदावन की हवामें, अुसकी रंग-बदल हरियाली, अुसके सुहावने रंगों में, कि मन सहज ही प्रभुस्मरण की ओर मुड़ने लगता है। यहांकी तो तुलसी तक को गोया अपने पावित्र्य का भान है ! यहांका दूध ? ओह ! साक्षात अमृत ! और दही ? और छाछ ? अिनके सामने मेरे पियरके भारी भारी,

१ वन-सब्जियाँ=वन-हरियाली की विविध छटाअें २ राज़=भेद, रहस्य
३ अिबादत=प्रार्थना

[1]पुरतकल्लुफ़ पक्वान्न तो कोओी विसात नहीं ! और यहाँका जल अैसा तो साफ़, शीतल और मीठा है, कि प्यास बुझने पर भी [2]सेरी होती ही नहीं ! अरे और तो और, यहाँकी झाड़-पोंछ, मांज-मूंज, रसोअी-धुलाअी तक रस-व-रहस्यमय मालूम होती है ! मानो यह वृंदावन अेक बड़ा सा देवालय हो, जिसमें किये हुअे सभी बड़े छोटे काम पवित्र पूजा विधियों का दरजा रखते हों.......

मैं अपने नाथ की रोज़ बरोज़ बढ़ती कृपा का क्या बयान करूँ ? अभीसे वे तो मेरे पूरे दिलोजान पर [3]क़ब्ज़ा जमाने लग गये हैं। वैसे तो सभी मेहेरबान हैं——ना ! मेरी छोटी ननँद नहीं ! मगर अुसका मैं विचार ही क्यों करूँ ?....दुष्ट कहीं की ! अुसका अेक अेक कृत्य याद आता है, तो तन बदन में आग लग जाती है !....अूँह ! अुसे भूल ही जाअूँ ! भूल ही जाअूँ, कि परसों अुसने मुझे क्या ज़ालिम चिम्टी काट ली थी, सिर्फ़ अिस अपराध पर, कि 'वे' मेरे लिअे अेक नया वस्त्र भेंट लाये थे ! और अुस रोज़, जो नाथ को मेरे माथे पर प्रेम से हाथ फेरते देखा, तो ओफ़्‌ोह ! [4]निगोड़ी जल भुनकर ख़ाक ही हो गयी ! और फिर जो मेरे बाल खसोटे हैं, कि बस ! बस ! कुछ न पूछो ! दिनभर मारे दर्द के सर धमधमाता रहा....सच कहती हूँ, मैं कोअी अैसी [5]चेटख़ी तो हूँ नहीं: पर भअी, सूखी रोटी किसके गले अुतरेगी ? अभी चंद ही रोज़ हुअे, कि हमारी ननँद साहेबा को अेक [6]मज़ाक़ सूझा : मेरा

---

१ पुरतकल्लुफ़=ज़ियाफ़ती २ सेरी=तृप्ति ३ क़ब्ज़ा=अधिकार
४ निगोड़ी=अभागिनी ५ चेटख़ी=किटकिटी ६ मज़ाक़=विनोद

सारा ही दूध फेंक फाँक कर कोरी, कड़ी रोटी मेरे सामने धर दी ! अब भला बताअिये—अुसे निगलूँ तो कैसे ? हार कर मैं भूखी ही पंगत से अुठ गयी। बस ! फिर चली तानों की अमृत-धारा ! "क्या भावी मिली है हमें, कि वाह वाह ! पक्की साधवी ! भोजन क्या और पानी क्या ? बस, अुपवासिनी हो तो अैसी हो ! वलिहारी !" हे प्रभो ! मैं दाँत पीस कर चुप मार गयी, पर बस चलता तो वहीं अुसे अेक दो अच्छी सी रसीद कर देती ! (अब भी स्मृति मात्र से मेरे हाथ चमचमा अुठते हैं....)

मगर यह बुरा है। अैसे विचारों से मन बिगड़ जाता है। परमपूज्य गुरुजीने पिताजी से क्या कहा था ? "अरे राजन्, 'भला' क्या और 'बुरा' क्या ? अिस जगतमें कौन किसकी हक़ीक़त जानता है ? 'भलाअी-बुराअी' तो हमारी ही कल्पनाका अेक खेल, हमारी ही भावनाओंका अेक धोखा है। जो भाअे सो 'भला,' और न भाअे सो 'बुरा'—यह अिन्सानकी रची शब्द-लीला है। ज्ञानी अिसे समझकर अिससे अलिप्त रहता है। वह जानता है, कि सृष्टि में हर चीज़ के दो स्वरूप हुआ करते हैं—अेक भगवान का बनाया सत्य स्वरूप, और अेक मन का बनाया मायावी स्वरूप। तुम माया के परदे को चीरकर अब सत्य की ओर बढ़ते चले जाओ। राजन् ! अिस सारे ही जगत में अेक अटल नियम अपना काम किये जाता है: 'जैसी जिसकी भावना, वैसो दरसन पावै'।" अिसका मतलब यह हुआ, कि अपने जगत के सर्जनहार हम ही है ?

---

१ ताना=कटुव्यंग

हमारी [1]फ़ितरत ही हमारी [2]क़िस्मत है ? अुस वक़्त तो मैं गुरुजी की बात पर हँसी थी, पर अब सोचती हूँ, सच तो है ! हे भगवान ! तो कहीं अैसा न हो, कि मालती को दुष्ट मान कर मैं अुसे और भी दुष्ट बना दूँ ! मालती, तुझे साष्टांग दण्डवत प्रणाम ! हमारे प्यारे गुरुजी के कहे मुताबिक़, मैं तेरी हक़ीक़त तो जानती नहीं : तू जैसी होगी वैसी होगी। पर मैं तुझे बुरी मानूँगी, तो तू बुरी ही होकर मुझे दर्शन देगी; और भली मानूँगी—तो—पर भली मानूँ कैसे ? ओ प्रभो ! यह तो बड़ी मुश्किल है !....पर ना ! मैं तो तुझे अच्छी मानूँगी ही ! मानूँगी ही ! मानूँगी ही ! अब तो तू अच्छी बनेगी या नहीं ? मेरी नेक ननँदिया ! मेरी मीठी मालती ! मेरी [3]बेख़ाम बहन ! तेरी बलाअें ले लूँ ! तू [4]फ़ौरन् अच्छी बन जा, वरना—यह है मेरी सोंटी, और वह है तेरी पीठ ! !....लो, हँसी आ गयी ! दिल का [5]गुबार कुछ छँट गया। अब किसी प्यारी प्यारी, मीठी मीठी चीज़ का विचार करूँ....

यह कृष्ण तो, भअी, कोअी अद्भुत व्यक्ति मालूम होते हैं ! कौन हैं, क्या करते हैं, कहाँ रहते हैं, अब कहाँ हैं, अिसका पता ही नहीं चलता ! गोपियाँ अलबत्ता जानती होंगी : कृष्ण का नाम तो अुनकी ज़बानों पर सदा ही नाचता रहता है। मैं अुन से पूछना चाहती हूँ, पर—न मालूम क्यों—बहर हाल, यह [6]राज़ है बड़ा दिलचस्प ! क्या बात है, कि यह नाम सुनते ही मेरा दिल कुछ

---

१ फ़ितरत्=स्वभाव २ क़िस्मत=विधाता ३ बेख़ाम=दोषरहित
४ फ़ौरन=तुरंत ५ गुबार=धुंध ६ राज़=रहस्य

अैसा—बेचैन सा—हो जाता है? अुसका अुच्चारण करते करते मेरी ज़बान क्यों [1]लक़्वा मार जाती है? हल्क़ क्यों बंद पड़ जाता है?...."कृष्ण"! भला क्या ही मोहक नाम है? चंद्रिका जिस तरह जमुना की श्याम-रुपहली लहरों में बेमालूम घुलमिल जाती है, अिसी तरह यह नाम मेरी रग-रग में प्रविष्ट होकर मेरे रक्त के साथ अेकरस हो जाता है....अरे, कुछ अजब मीठा शब्द है यह! कुछ अजब सुंदर शब्द है! लजाती ज्योत्स्ना ज्यों अभिसार के हेतु से अंधारे निकुंजों में छिपती छिपती चली जाती है, पर वहाँ पहुंचते ही बेचारी अुन्हें रौशन किये बिना रह नहीं सकती, ठीक अुसी तरह यह नाम-किरण मेरी हृदय-गुहा में वैसे तो चुपके चुपके दाख़िल होती है, पर फिर अपने ही काव्यमय नूर से [2]मजबूर होकर अुसे अुज्ज्वल बना देती है....सचमुच! कुछ अजीब ही है यह नाम! रौशन, रंगीला, सुरीला....और वह जो हैं, अिस जादूभरे नाम के स्वामी? क्या वे भी अैसे ही ज्वलंत हैं, रंगीले हैं, मनोहारी हैं?.... अेक दिन मैं भी जान लूँगी! किंतु यह ज्ञान ख़ुदबख़ुद आयगा, किसी के कहने सुनने से नहीं। बस घड़ी आने की देर है! मैं अधीर क्यों होअूँ? अिस न जानने में भी तो बड़ा मज़ा है!....आहा! क्या [3]नफ़ीस अुपमाअें झलक रही हैं मेरे मनमें! मानो धनुरंगी [4]जुगनू!.... कैसे हैं वह अनदेखे, अनजाने कृष्ण?....हाँ!....मेरी [5]नीम-अंधी आँखों के सामने वे दूज का चन्द्र बने हुअे हैं, काली काली घटाओंकी

---

१ लक़वा=अर्धांग वायु २ मजबूर=विवश ३ नफ़ीस=सूक्ष्म-मोहक
४ जुगनू=आगिये ५ नीम=अर्ध

आड़ में खिलखिलाते सितारों के संग आंखमिचौनी खेलता....रे रे! कितना बारीक! कैसा सुकुमार? बस एक चिलकती धार....अेक दमकता सपना.... अेक रुपहला संकल्प!....हाँ हाँ! ठीक तो है! मेरे चित्ताकाश पर छाये हुअे बेखबरी के सियाह बादलोंमें यह नाम अुसी तरह खेलता, कभी छिपता, कभी झिलमिलाता रहता है....कृष्ण! कृष्ण! अहो कृष्णजी!....कल्पनाअें? तो कल्पना सही। हे कृष्ण! मेरा कुछ तो आपके चरण स्पर्श ले!....

दो रोज़ बाद

अुन्हें 'मोहन' भी कहते हैं; और 'हरि,' 'नंद किशोर,' 'कन्हैया,' 'कान्ह'—और पता नहीं और भी क्या क्या! अेक अेक नया नाम मुझे मुग्ध कर देता है, मानो किसी दिव्य राग का ताज़ा ही सीखा हुआ मोहक, मस्ताना सुर हो। यह नामरूपी मोती ज्यों ज्यो मेरी सखियों की ज़बानों से झरते हैं, त्यों ही त्यों मैं अुन्हें चुन लेती हूँ, और अपनी आतुर सुरति के सुवर्ण तार में पिरोकर, गोया अुन की कंठी बना गले में पहन लेती हूँ।

अिस नाम ने मुझे कुछ अैसा तो मोहवश कर दिया है, कि कअी बार मैं "कृष्ण" के सिवा और सभी कुछ भूल बैठती हूँ! अचंभा अिस बात का है, कि अैसे निरंतर स्मरण का मेरे बाह्य जीवन पर कोअी ज़ाहिरी असर नहीं होता। काम अुसी तरह चलता रहता है, अतराफ़[1]

---

१ अतराफ़=आसपास

के लोगों के साथ मेरा संबन्ध जैसा का वैसा क़ायम रहता है। तब भी, मुझे अिस बढ़ती भावना पर कुछ तो अंकुश रखना पड़ेगा। आज सुबह ही क्या मज़ा हुआ! नाथ के लिये तुलसी पत्र चुनते चुनते मैं सहसा अुस शब्द 'कृष्ण' में गुम सुम हो गयी! नाथ को भूल गयी, अुनकी पूजा भूल गयी, तुलसी पत्र भूल गयी! ग़ज़ब हो गया! होश आया, तो देखा वे [1]हैरतज़दा आँखों से मेरा मुँह तक रहे हैं! मैं घबरा गयी। अिस तरह तो चल नहीं सकता। मेरे प्रीतम मुझ से नाराज़ हो गये, तो जीअूँगी कैसे? अब वे सच मुच मेरे हृदय के स्वामी, मेरे प्राणों के भी प्राण बन गये हैं। मेरी [2]हस्ती अब अुन्हीं पे निर्भर है; वे सूर्य हैं, मैं तो अुनकी किरण मात्र हूँ। अिस लिये मुझे खूब ही सँभल कर चलना चाहिये। कहीं अैसा न हो, कि यह शब्द 'कृष्ण' मेरी सुध-बुध हर कर मुझे अपने कर्तव्य से ग़ाफ़िल बना दे। मेरे कारण मेरे स्वामी के धीर और कोमल हृदय को ज़रा-सी भी ठेस लग गयी, तो मैं बरदाश्त न कर सकूँगी। अब तो वे ही हैं मेरा सहारा, मेरे जीवन की नींव, मेरे सर्वस्व ....

कुछ देर बाद

आज अुपवन में अेक कौतुक हो गया। मैं अपनी सहेलियों के संग घूमने निकली थी। सहसा अेक माअी पर नज़र पड़ी, जो अुन सुंदर निकुंजो में कुछ बेतुके से चक्कर लगा रही थी। अुसका वस्त्र

---

१. हैरतज़दा=आश्चर्यपूर्ण, २. हस्ती=अस्तित्व

चिन्दे चिन्दे हो रहा था, और लंबे खुले बाल हवा में निरंकुश लहरा रहे थे। अुसकी आँखें रुदन और निद्रानाश से लाल लाल और अंदर गड़ी हुअी थीं। अुस धुन की मारी को देह का तनिक भी भान न था! मारे थकन के क़दम कभी रुक जाता था, कभी पैर लड़खड़ा जाते थे। दांअें बाअें निगाहें फेंकती चली आ रही थी, गोया किसी की ढूँढ़ में पागल हो रही हो। कभी कभी हाथ अुठा या लंबा देती थी, गोया न मालूम किस [1]माबूद से याचना, या किस खोअे हुअे को अिशारा कर रही हो। मेरी सखियाँ कुछ थम गअीं, और आपस में [2]सरगोशियाँ करने लगीं। "माअी जसोदा?" "हाँ!" "यहाँ? अिस हालत में?" "हाँ। अुसे ढूँढ़ रही हैं, जो आता ही नहीं!" "रे रे! ग़रीब बेचारी! कैसी दुर्दशा!" "सुना है दिन रात रोती रहती हैं: न खाती हैं, न पीती हैं, न सोती हैं, न कुछ काम ही कर पाती हैं।"

मैं ने धीमे से पूछा; "यही, माअी जसोदा?"

मेरी सहचरी ने सर डोलाते होंठ पर अंगुली रख दी। अितने में माअी जसोदा की घूमती नज़र हम पै पड़ी। अुन के [3]लबों से अेक दर्द भरी आह फूट निकली, और फिर ज़ोर की पुकार: "कृष्ण! कृष्ण!" हम सब की सब तेज़ी से अुनकी ओर बढ़ने लगीं। तब [4]हसरत भरी आँखों से अेक अेक गोपी का मुँह तकते हुअे अुन्होंने अुत्कंठा-कंपित आवाज़ से पूछा: "बेटियो, भला तुमने कुछ मेरे कृष्ण को देखा था? ,...

---

१. माबूद=भगवान, जिसकी अिबादत होती हो २. सरगोशियाँ=कानाफूसी
३. लब=होंठ, ४ हसरत=अरमान; कुछ निराशामय अुत्कंठा

ज़रा कहो तो ?.... भगवान जाने कहाँ चला गया ! साथ मेरा चैन ले गया, मेरी नींद ले गया। रे मुझे सिड़न बना गया ! तुम्हें कुछ खबर हो तो बता दो, बेटा, भगवान तुम्हारा भला करेंगे ! ”

अुन का मीठा स्वर भग्न हुआ। साँस भर आयी। मेरी सखियों ने अत्यन्त दुःख से सर हिला दिये।

रुक रुक कर, बमुश्किल अेक ने कहा, “हम भी तो—अिसी-चक्कर में हैं, मैया ! हमारे—हमारे भी—जीवन-दीप—वे—बुझा गये ....” अुसकी आवाज़ लरज़ कर बन्द पड़ गयी। अेक दूसरी अुद्गारी, “हमारे लहलहाते बृन्दावन को स्मशान बना गये ! देखिये, फूल अनखिले ही मुरझा रहे हैं, हरियाली से ताज़गी अुड़ गयी, लताअें सुस्त और बेलचक हो रही हैं—कृष्ण, अुनके प्राण, जो जाते रहे !”

माअी जसोदा ने गहरा निःश्वास छोड़ा।

तब अेक तीसरी गोपी ने कहा, “हमारे भाअी-बांधव भी खान-पान त्याग कर पागलों की तरह दिनरात अपने प्रिय सखा की खोज में भटकते फिरते हैं !”

माअी जसोदा फिर अुसाँस भर कर सर हिलाने लगीं।

तब फिर अेक चौथी गोपी ने कुछ अजब दर्द के साथ अपनी बिथा यों सुनाअी : “रे माअी, क्या कहूँ ! कुछ सूझ नहीं पड़ती ! ....वैसे तो हम दिन रात अुस चंचल कन्हैया की फ़रियादें लिये

आपके पास दौड़ी दौड़ी आती हैं, कि अुसने अिस तरह हमें सताया, अिस तरह बाट में रोका-टोका, अिस तरह हमसे छेड़ छाड़ की !.... और यह [1]वाक़ेआ है, कि वह है बड़ा नटखट ! कभी तो बिल्ली की तरह दबे पाँव पीछे से आन कर, हमारी दही की मटुकियाँ छीन छान कर, हँसता, नाचता, मुंह चिड़ाता चँपत हो जाता है !" (माअी जसोदा और हम सब बे अिख़्तियार मुस्कुरा दीं :) "और कभी अचानक ही धक्का मारकर हमारे अपनी ही गागरों के नीर से हमें शराबोर कर देता है ! और कभी तो अुसकी जादूभरी मुरली यहाँ बजती है, तो कभी वहाँ। और कभी यहाँ, वहाँ, अूपर, नीचे—चौतरफ़ और हर जगह ! राम राम ! बस फिर तो हमारा कुछ न पूछिये ! सुधबुध ग़ायब ! काम बाम भाड़ में ! पगली गिलहरियों की तरह लगीं दौड़ने अिधर, अुधर, चीख़ती, चिल्लाती—! तो फिर आश्चर्य क्या, कि अुसके कारण हमारे घरों में आये दिन ही [2]कल्ला मचा रहे, और हमें सैंकड़ों गालियाँ-बोलियाँ सुननी पड़ें ?..........

मगर—ओ मा ! अुसके वियोग से तो अुसकी शरारतें भलीं !"

वह ज़रा रुकी, फिर धीमी, कंपित आवाज़ से बोली; "और जब हम को, जो अुनकी भक्त मात्र हैं, अैसा होता है, तो आप को क्या होता होगा, जो अुनकी भक्त भी हैं, और माता भी ?"

अुस के नयन सजल हो गये। दाँत तले होंट दाबकर वह चुप हो रही। पर अुसकी हार्दिक सहवेदना से माता जसोदा का करुण धैर्य

---

१. वाक़ेआ=सच्चबात २. कल्ला=कलह

सहसा जाता रहा। वे ज़मीन पर ढल्क गअीं, और अपने अुमड़ते आँसू, छिपाने के लिये [1]ज़ानुओं बीच अपना मुंह डाल दिया। हम सब ख़ामोश, अपने आँसू पीती, चित्रवत् वहीं खड़ी रहीं। अुस सुंदर कुंज में अेक [2]ग़मगीन नीरवता छा गयी....

हाय रे! अैसी माता, और यह पुत्र वियोग!........अुनका वह [3]दिलफ़रेब माधुर्य मैं कैसे भूलूँ? कुछ अजब माधुर्य!....अुन्हें शकर कहूँ, या शहद? मगर शकर में वह [4]लताफ़त् कहाँ? और शहद में वह [5]नफ़ासत् कहाँ? नहीं! अुनका माधुर्य तो कुछ गंभीर, निराली चीज़ है। जो प्रेम और निष्टा के सुंदर मिलान से अुपजी हुअी मालूम होती है, अुनकी प्यारी आँखों में कुछ अद्भुत वात्सल्य है। मानो कृष्ण की माता कहलाकर वे अखिल विश्व की माता बन गअी हों....

... मगर यह कृष्ण है कौन, जिन में गोकुल का समस्त तेज, सौंदर्य, आनंद—रे जीवन समाया है?

जानूँगी मैं। घड़ी आने दो। मैं ज़ुरूर जानूँगी।

तीन रोज़ बाद

"आज तो अजब ही आनंद, आनंद!"

वे दिखे हैं! कृष्ण दिखे हैं!!

---

१. ज़ानू=घुटने   २. ग़मगीन=दुःखभरी   ३ दिल फ़रेब=दिलपे जादू चलानेवाला ४. लताफ़त=रसिकता ५ नफ़ासत्=नज़ाकत, अतिसूक्ष्म मोहकता

दिनभर का काम काज खत्म करके, हम तीसरे पहर को अेक टेकरी पर जा बैठीं। आज गोपियों के दिल कुछ विकल से मालूम हो रहे थे। सुस्त और बेज़ार, किसी चीज़ में मन लगता ही न था। जी बहलाने के लिये कोअी पुष्पमाला गूँथने में लग गयी, कोअी अिधर अुधर की बातें करती रहीं, और हम बाक़ीकी रास खेलने लगीं। अेक सखी, मगर, ज़रा अलग, सभों से दूर जा बैठी, खामोश, और बिल्कुल निश्चल। अुसके चेहरे पर किसी गूढ़ विचार की शांति छायी हुअी थी, अुस के खुल्ले, विशाल नयन किसी [1]गैबी दृश्य पर जमे मालूम होते थे, और अुन की गहरी सियाही में गोया अंगारे दहक रहे थे। अुसके नाज़ुक लबों पर अेक मंद, किंतु बड़ी ही रहस्यमय मुसकान झलक रही थी।

यकायक गोपियों के अस्थिर मन [2]रमत-गमत से अूब गये। वे बेदम होकर बैठ गयीं, और लंबे लंबे अुसाँस भरने लगीं। अेक बेज़ारगी से बोल अुठी, "खेल खेल के करें क्या? कान्ह बिना किसी चीज़ में कुछ मज़ा ही नहीं!"

यह सुनकर अुस खामोश सखीने धीरे धीरे हमारी ओर नज़र फेरी, और धीमी आवाज़ से, विचारपूर्वक, वह चार शब्द बोली, कि सुनते ही गोपियाँ फड़क अुठीं, अुन के शरीर लरज़ गये, और साराही वायुमंडल आनंद, आनंद से तमतमाने लगा। वह बोली :

---

१. गैबी=अदृश्य २. रमत-गमत=खेल कूद

"मैं ने अुन्हें देखा ।"

अेक सन्नाटा—और फिर—ओफ़ोह ! हवा अुत्सुक आवाज़ों से गूँज अुठी ! "अुन्हें देखा ? कहाँ ? कहाँ देखा ? ओ कल्याणी ! ओ भगवद्-प्रिये ! तेरी बलाअें ले लूँ ! वे कहाँ थे ? कब देखा ? बोल, बोल, जल्दी बोल ! वे कुशल से तो हैं ? कुछ बोले भी ? री सपना तो नहीं देखा ?.... अूँह ! फुज़ूल हमें बना रही है !"

ओ हो हो हो ! गोया असंख्य भिड़ें अचानक छिड़ कर अेक साथ भिन्भिना अुठी हों !........

आखिर जब प्रश्नों की आँधी कुछ मंद पड़ी, तो अुस पावन, मगन गोपी ने जवाब दिया :

"हाँ । मेरे स्वामी को मक्खन रोटी पहुँचा कर जब घर लौट रही थी, तब मैं ने अुन्हें देखा....बरगद के पेड़ से टेका लगाये खड़े थे, और दरख़्त[1] की अूँची अूँची डालों को बड़े ग़ौर से तक रहे थे । बिल्कुल ध्यान-मग्न थे ! बिसारी हुअी मुरली कर-कमल की अंगुली-पाँखों[2] में अुलझी पड़ी थी—मुकुट का मोरपींछ तक हिलता न था !........ मैं पास से गुज़री, पर मेरे छनछनाते नूपुरों का शब्द सुना ही नहीं !.... बस, अुन पै नज़र पड़ते ही मेरे होश गुम हुअे ! मैं वहीं की वहीं पथरा कर रह गयी । मेरे समस्त प्राण मेरी पुतलियों में आ समाअे । मेरी प्यासी आँखें अुस सौंदर्य-दर्शन से किसी तरह तृप्त ही न होती थीं !

१. दरख़्त=वृक्ष २. पाँख=पाँखरी

मेरा अंग अंग अुनकी [1]नीलगूं [2]जिला से [3]लब्रेज़ हो गया,—यह मालूम होता था, मैं किसी दिव्य आकाश में डूबी जा रही हूँ....पता नहीं मैं कब, और कैसे, घर पहुँची ! आज मैं विल्कुल ही खोयी हुअी, किसी स्वप्न-सृष्टि में घूम रही हूँ। प्रीतमजी के त्रितापहारी दर्शनों से मन शांत और शीतल हो गया है। वह अनुपम मूर्ति अब दिलमें बस गयी है, और आँखें असके पीछे पागल होकर और किसी चीज़ को देखती ही नहीं !"

वह गद् गद होकर रुक गयी। सारी मंडलीपर ख़ामोशी छा गयी। मेरा भी हल्क़ बंद था, आँखें अुमडते भावों के भार तले दबी सी जाती थीं....कुछ देर बाद मैंने सर अुठाकर अपनी सखियों की ओर देखा, तो सभों की आंखें सजल, सभीके चेहरे आँखुओं से भीने—मानों ओस के कमल !

अिसी भावपूर्ण सन्नाटे में घड़ियाँ बीत गयीं। फिर तो मेरी अुभरती जिज्ञासा दबाये न दबी ! दिल धड़क रहा था, जिस्म में कुछ सन् सन् सा हो रहा था, लहू का बिंदु बिंदु किसी मधुर, अकथ्य आनंद से जोश खा रहा था। मन में अेक धुंधली सी आकृति झलक झलककर मेरी बेचैनी को और बढ़ा रही थी। मैंने प्रयत्नपूर्वक विल्कुल मामूली आवाज़ से पूछा : "अिन—कृष्ण—का वय क्या होगा ?"

ज़रा सँभलकर अेक गोपीने जवाब दिया, "होंगे कोअी दस सालके ! मगर"——मेरे आश्चर्यपर हँसकर—"यह थोड़े ही कोअी मामूली

---

१ नीलगूं=नीलवर्णी २ जिला=तेज रौशनी ३ लब्रेज़=छला छल भरा हुआ

अिन्सान हैं, जो देश काल के नियमों से बँधे रहते ? अुम्र भले ही छोटी हो, अुनकी प्रज्ञा तो देखो ! यह अलौकिक ज्ञान, यह दिव्य, आदर्श चारित्र्य, यह विश्व-मोहन सौंदर्य, यह अप्रतिम शरीर-बल; सभी बता देता है कि मुरारी कोअी अिस लोक के मानव नहीं, बल्कि कुछ और ही हैं, जिसका गुमान तक करते हमें डर आता है !"

अितना कह कर वह तो ध्यानस्थ हो गयी। पर मुझे चैन कहाँ ? क्षणभर खामोश रह कर मैंने फिर पूछा, "तब तो वे जगप्रसिद्ध होंगे ?"

अेक दूसरी सखी ने लापरवाही से अुत्तर दिया,

"भगवान जानें ! हमें क्या खबर ?"

लो और सुनो ! "हमें क्या खबर ?" ! ! मुझे बड़ा अचंभा हुआ। कुछ झुंझलाअी भी ! ("यह मुझे बना रही है, क्या ?")
मैं, मगर, न टलनेवाली थी, न टली। ढिटाअी से पूछती ही चली गयी :

"पर तुम सब तो अुन्हें अच्छी तरह जानती हो ?"

अुसका चेहरा तमतमा अुठा, आँखें मखमल सी [1]मुलायम हो गयीं; लबोंपर आनंद-लहरी अुठी, और शम गयी। वह कुछ अजब [2]अन्दाज़ से बोली, "हम ? हाँ ! हम अुन्हें ज़ुरूर जानती हैं ! हमें तो अुनसे प्यार है ना ?"

---

१ मुलायम=नर्म; कोमल २ अन्दाज़=अदा। तरह। भाव।

अच्छा ! मैं खामोश हो अिस पर मनन करने लगी । हर कोअी, सच, अुनको नहीं जान सकता ? बस वही जान सकते हैं जिन्हें अुन से प्यार हो । हाय रे ! तब मैं तो अुन्हें कभी न जानूँगी ? मैं तो दिलो-जान से मेरे नाथ को चाहती हूँ; फिर कृष्ण को कैसे चाहूँ ? 'मेरे नाथ' ! हाँ, मेरे हृदयनाथ ! मेरे प्राणों के स्वामी ! मेरा आश्रयस्थान, मेरे नयनों की ज्योत, रे मेरी जान और मेरा जीवन ! मेरा देवस्थान भी वे ही, मेरे अुपास्य-देव भी वे ही....फिर, कृष्ण, तुमसे मैं कैसे प्यार करूँ ? और प्रेम–बिना रे रे ! मैं तुम्हें जान भी नहीं सकती !——मगर——मगर अिन गोपियों का क्या ? यह भी तो अपने पतियों को चाहती हैं ! अुनकी बड़े चाव से सेवा करती हैं ? और साथ ही कृष्ण पर भी वारी जाती हैं, ! यह कैसे हो सकता है ? क्या दुनिया में दो क़िस्म के प्रेम हैं ?....ओ गुरुजी, काश आप यहाँ होते ! मन के संशय अब किसके पास ले जाअूँ ? कैसे समझूँ ? क्या मानूँ ?....और यह कृष्ण ! दस साल की अुम्र, और यह अनुपम सामर्थ्य, यह अद्‌भूत प्रभाव ! माननेवाली बात नहीं है ! गुरुजी, आपने क्या ही खूब कहा था !" अरे राजन्, दुनियाके चमत्कारों में सबसे अद्‌भुत चमत्कार 'सत्य' है !"

दूसरे रोज़

हर हर हर ! यह क्या हो गया ? क्या अिसी लिये मैं ने जनम लिया था ? शर्मिला, अजेय पिता की पुत्री ! आज तेरी यह अधोगति ?.... माँ ! माँ ! तू किधर गयी ? मेरे पास क्यों नहीं ? अब मैं तेरे बिना नहीं– नहीं जी सकती ! नहीं जीनेकी !.... पर–अच्छा ही है तू यहाँ नहीं ।

तेरी लाड़िली शर्मिला की यह दुर्दशा तू कैसे देख सकती ? तूने तो अेक फूल की तरह अुसे [1]अुछेरा था : किस प्यार से ! किस [2]सब्र से ! कभी अुसके सामने तूने आवाज़ तक न अुठाअी !.... और आज—और आज—रे रे माँ, मैं ख़ाक में मिली हुअी हूँ !.... हे अभागिनी, जिसका न अिन्सान रहा है न भगवान, तू जीती क्यों है ? क्या जमराज भी तेरी [3]मन्हूस सूरत से डर कर कहीं दूर दूर भाग गये हैं ?....

अुफ़! अुफ़ ! अुफ़ ! मेरे कानों में यह कैसे शब्द गूँज रहे हैं ? अै काश मैं मर कर भी अुन से जान छुड़ा सकती !—और कहती है—कहती है मैंने अुसे गालियाँ दीं ! कहती है मैं अुस पे टूट पड़ी; मैं ने अुसे मारा ! ! खूब भअी ! और यह सब अुसकी बात पे यक़ीन लाते हैं ! हाँ, मेरे नाथ तक—कुछ तो....रे, मैं पागल हो जाअूँगी ! मैंने अिन ज़ालिमों का क्या बिगाड़ा था, जो अिस बुरी तरह मुझे [4]ज़लील कर रहे हैं ? अैसा बरताव तो कभी स्वप्ने में भी किसीने मुझसे किया न था.... और अितने दिनों में मैं काफ़ी थप्पड़ें खा चुकी हूँ ! मेरी छोटी ननँद कोअी खाण्ड की पुड़िया नहीं, भगवान जानते हैं ! अुसके कितने कितने ज़ुल्म मैंने ख़मोशी से बरदाश्त किये हैं—माफ़ भी कर दिये हैं.... अरे अेक दिन की बात याद आती है—मैं दूध दुह रही थी, और अुस पगली गाय ने दुहनी को लात जड़ दी ! सारा दूध मिट्टी में मिल गया—और ओ प्रभो ! मेरी ननँद की गरज-कड़क !

---

१ अुछेरा=पाला पोसा २ सब्र=धीरज ३ मन्हूस=अशुभ, बदनसीब
४ ज़लील=अपमानित

आकाश पाताल अेक कर दिया....और अुस रोज़, जब घाट से वापस लौटते मेरा पाँव फिसल गया, और छलाछल भरी गागर माथे से लुढ़क कर धड़ाम से ज़मीन पर जा गिरी : मुझे भिगो दिया, और आप टुकड़े टुकड़े हो गयी। अिसमें भला बात ही क्या थी ? मैं हँसती हँसती घर आअी—और मालती के हाथों अैसी तो चपत खाअी ! (अुस रोज़ नाथ घर में न थे)। और अुस रोज़,—(हँसी भी आती है !)—जब हरसिंगार के फूल चुनते चुनते मेरा वस्त्र अेक कंटक-झाड़ी में अुलझ गया। मैं जो अुसे छुड़ाने लगी, तो अेक मधुमाखी कम्बख्त वहाँ से 'गुंअीं ! गुंअीं !' करती निकली, और मेरी ननँद को डस गयी ! अब अिसमें मेरा क्या [1]कुसूर ? मैंने थोड़े ही अुस मधुमाखी को पट्टी पढ़ाअी थी ?....मगर यह सब तो खैर ! मालती का स्वभाव ही कुछ अैसा वाके हुआ है। मिज़ाज अेक भड़कती आग, और ज़बान विषैली चाबुक....

पर आज तो अुसने बस हद ही कर दी। और मैं बिल्कुल निर्दोष ! कोअी सुने और न्याय करे कि मैंने गुनाह क्या किया, आखिर ?

बात बनी अैसे।

आज सुबह घाट पे जल भरते मुझे अेक देवी के दर्शन प्राप्त हुअे। अहो ! जिस्म था, या नूर का पुतला ! अुस ज्वलंत चहरे की [2]खूबसूरती कुछ अैसी थी, कि हम सब बस देखती ही रह गयीं, और देखते

---

१ कुसूर=अपराध २ खूबसूरती=सौंदर्य

देखते [1]दुनिया-व-माफ़ीहा से बेखबर हो गयीं ! सीधी, बारीक भृकुटियों तले दो शांत, विशाल नयन सियाह सितारों की तरह चमक रहे थे, और अुनकी [2]निगाह फूल की सी कोमल और सिंह की सी निश्चल और निडर थी। भव्य ललाट हिमालय की विरक्त और बरफ़ीली चट्टानों की तरह शानदार और पवित्र था। [3]सुंवाली, चमकीली [4]जुल्फ़ों की आड़ में वह अतिमोहक मुखमंडल अैसा शोभता था जैसे सियाह, लहरीदार मख़मल में जड़ा हुआ कोअी दमकता मोती, और बड़े, चिकने जूड़े में [5]जा-ब-जा खोंसे हुअे चँपक अैसे चमक अुठते थे, मानो घोर रजनी में झिलमिलाते सुनहरे दीपक! रे, अुस [6]दिलशिकन सौंदर्य का मैं क्या बयान करूँ !—

अुनका सुफ़ीद वस्त्र अुनकी शानदार आकृति को गोया प्रेम से चिमट रहा था, और यह मालूम होता था, अुसमें से भी अुनके नूर की [7]शुआअें निकल रही हैं। वह रौशन, धवल बदलियों में लिपटी हुअी कोअी देवकन्या ही मालूम होती थीं। अुनके नाज़ुक [8]लबों की रेखा रेखा प्रेम, धैर्य और गांभीर्य की सूचक थी, और साथ ही अुनमें अेक सूक्ष्म [9]नर्म-रसिकता भी थी, गोया वह हर चीज़ से लुत्फ़ अुठाती रहती हों, और हर प्राणी से प्यार करती हों : अुसके दोष देखते हुअे भी कभी नाराज़ न होती हों, बल्कि अुसे नादान बालक समझकर अुसकी मूर्खताओं पर अतिवात्सल्य से हँसती रहती हों.... अुन के दीदार मात्र से मुझे

---

१ दुनिया-व-माफीहा=सचराचर जगत २ निगाह=नज़र, दृष्टि
३ सुंवाली=हमवार व मुलायम ४ जुल्फ़=लट ५ जा-ब-जा=अिधर अुधर
६ दिल शिकन=दिल तोड़ ७ शुआअें=किरनें ८ लब=होंट
९ नर्म-रसिकता=हर चीज़में छिपे लुत्फ़ को परखने की ताकृत।

कुछ प्रेम और आनन्द की मस्ती सी चढ़ गयी ! दिल अेक वार धड़क कर शांत हो गया : अेक पावन भीति ने अुसे [१]सहमा दिया। और अेक अपूर्व आदर से मेरे हाथ खुद-ब-खुद जुड़ गये, और मस्तक झुक गया। और यही हाल मेरी सारी सहेलियों का भी था।

वह जल भरने जो झुकीं, तो अुनके जिस्म की मोहनी [२]जुंबिश, और नाजुक बांहों के सौंदर्य से मेरा दम रुक गया ! मन ही मन सराहना करने लगी, "हे सिरजनहार ! हे शिल्पियों के परमगुरु ! क्या कमाल किया है तूने !".... और जब वह लचक खाकर फिर [३]अलिफ़ हो गयीं, और अेक अजब, कुदरती बांकपन से गागर को माथे पै थाम कर हमारी ओर अेक बार प्रेम से, हर्ष से मुस्करा दीं, तो मेरा प्यासा मन-मधुप अुनके चरण-सुमन से जा लिपटा, और अब वहाँ से हटता ही नहीं....वह जिस ख़ामोश शान से आयी थीं, अुसी शानदार ख़ामोशी के साथ चली गयीं, और अपनी [४]रूहानी महक हमारे दिलों में, और सारी ही [५]फ़िज़ा में छोड़ती गयीं। और अुनकी अतिमनोहर गति को देखकर मुझे विचार आया, "अिसी का नाम है 'गज-गामिनी' !"....

मेरा जिगर पानी पानी हो रहा था, टांगें लरज़ रही थीं, लब [६]खुश्क पड़ गये थे। अेक सखी से बमुश्किल पूछा : "यह—यह—यह कौन थीं ?"

....

---

१ सहमाना=थर्राना २ जुंबिश=हलचल; हरकत ३ अलिफ़ होना=सीधा खड़ा हो जाना। ४ रूहानी=आध्यात्मिक। ५ फ़िज़ा=वायुमंडल ६ खुश्क=शुष्क।

"अरे ! राधा को नहीं जानती ? तू रहती किस दुनिया में है, बावरी ?"

"राधा ! !"(आह !—रे सुरीला नशा !—)

"हाँ हाँ, राधा, पगली कहीं की ! हमारी सुंदर राधा ! हमारी मीठी राधिका ! हमारे कृष्ण की परम भक्त—हमारे सद्गुरुकी भी गुरु, राधा !"

राधा, कृष्ण की गुरु ! राधा, कृष्ण की भक्त ! राधा-कृष्ण ! राधा-कृष्ण !—रे रे ! क्या जादूभरी ध्वनि ! मैं देह और जगत का भान भूल कर, अेक अजीब मस्ती में आन कर, झूमझूम कर "राधा-कृष्ण ! राधा-कृष्ण !" की कृष्णगामिनी धारा बहाती घर की ओर चली । और मेरे नाचते क़दम क़दम के साथ मेरी पायलियाँ भी 'राधा-कृष्ण !' की मधुर झंकार करती जाती थीं ।

अिन रंग-रस भरे नामों पर मैं कुछ अैसी तो मुग्ध हो गयी, कि दूध दुहते दुहते मेरी ज़बान भी मेरे हाथों की [1]हरकत के साथ ताल देती हुअी निरंतर "राधा-कृष्ण ! राधा-कृष्ण" का धीमा धीमा अुच्चारण करती रही । अुस चढ़ती मस्ती के [2]आलम में मुझे न दुनिया का भान रहा, न गायका, न अपने आपका ! हौंठ यंत्रवत् 'राधा-कृष्ण !' का जाप जपे जाते थे, हाथ खुद-बखुद अपना काम किये जाते थे ।.... [3]रफ़्ता-रफ़्ता अिस मंत्र ने मेरे कंठ को भी वश कर लिया, गोया, और बिल्कुल

१ हरकत=हलचल २ आल्म=हालत ३ रफ़्ता-रफ़्ता=धीमे धीमे

ही वेख़याली में मेरा स्वर कुछ अूँचा और अूँचा चढ़ने लगा : "राधा-कृष्ण ! राधा-कृष्ण ! राधा-कृष्—"

मेरा ध्यान झटके से भंग हुआ : अेक कोपित नाग की सी फुँकार मेरे कान पै पड़ी ।

"क्या ख़ूब ! 'राधा-कृष्ण' !—चुड़ैल कहीं की ! !" सर अुठा कर देखूं, तो सामने मालती मुझ पै घुरकती खड़ी है ! मैं तो सहम ही गयी ! अुसका चहरा मारे गुस्से के [1]ज़र्द ज़र्द हो रहा था, आँखें दो दहकते अंगारे बनी हुअी थीं । मेरा हल्क़ बंद हो गया : मेरी [2]वहशत से पथराअी आँखें अुसके विकराल मुख पै चिपक गयीं ।

"बहुत ख़ूब ! बहुत ख़ूब, मेरी भोली-भाली, लटकती-मटकती राजकुमारी ! अब समझी घाट क्यों अितना भला मालूम होता है ! 'नहीं मालती बहन, आप क्यों तकलीफ़ करें ? मैं पानी भर लाअूँगी ! मैं कपड़े धो आअूँगी !' ! ! अुँ—हूँह ? क्या कहने हैं ! अच्छी अच्छी पट्टियां पढ़ आती है घाट की संगतों से ! दिखने को तो कैसी शरीफ़, और मन में यह कूट कपट !....हट मुअी ! दूर हो !"

मैंने काँपते काँपते कहा, "मैं-मगर-मगर-मैंने किया क्या ? सिर्फ़ 'राधा-कृष्ण'—"

"बस चुप हो, [3]नामाकूल ! मेरे सामने वह नाम लेते शरम नहीं आती ? फिर से कहा, तो जीभ ही खैंच निकालूँगी ! अुन [4]वदमआश

१ ज़र्द=पीला; फीका २ वहशत=डर ३ नामाँकूल=मूर्ख, नालायक़
४ वदमआश=वदचलन

गोपियों की तरह तू भी अुस [1]लफ़्फ़ाज़ लफ़ंगे के [2]दाम में आयी मालूम होती है !"

अब मैं भी चिढ़ी । कड़क कर बोली : "गोपियाँ बदमआश नहीं हैं ! अैसा मत बोलो ।"

"अुं-हूंह ! क्या शान है ! भअी वाह ! 'गोपियाँ बदमआश नहीं हैं' ! हाँ भअी हाँ ! तुम अुन्हें क्यों बुरी मानोगी ? वह सारी तो तुम्हारी जानोजिगर दोस्त बन गयी हैं ना ? और [3]यक़ीनन् तुम भी अुन्हीं की तरह अुस निकम्मी राधा को पूजती होगी, जो शरीफ़ [4]औरतों को धोखाबाज़ी सिखाती फिरती है, और पतिव्रताओं को अुनके धर्म से च्युत करना ही अपना धर्म मानती है ! राधा ! हं ह ! बड़ी आयी है देवी बनने ! देखा देखा अुसका दैवत !" और फिर अुसने चिल्ला चिल्ला कर अैसे तो नापाक शब्द अुच्चारे, कि मेरा सर चकरा गया, और मेरा शरीर अेक बेबस और कांपित लोचा बन कर रह गया । अुस के मुँहसे अुगलती [5]ग़लाज़त से मेरे कान भर गये । मैं गोया रौरव-समुद्र में डूबने लगी....मगर आख़िर मेरी धीरज की [6]तन्नाअी डोरी अेकदम से टूट गयी । [7]नफ़रत और [8]वहशत से बेखुद होकर मैं कूद अुठी, और झपटकर अुस के फेनाते मुँह पर ज़ोर से अपना हाथ दाब दिया । और थर्राती आवाज़ से पुकार अुठी :

---

१ लफ़्फ़ाज़=वाक्चतुर २ दाम=जाल; फंदा ३ यक़ीनन्=निश्चय
४ औरत=स्त्री ५ ग़लाज़त=गंदगी ६ तन्नाअी=तंगखिंची हुअी
७ नफ़रत=घृणा ८ वहशत=घबराहट

"बस ! बस ! बस ! चुप रहो ! राधिका का नाम न लो—तुम्हारी ज़बान अुसके लायक़ नहीं ! गालियाँ देनी हों, तो मुझे देती रहो। पर राधा ! आह ! राधा को रहने भी दो !"

वह अेक अुन्मत्त [1]दरिन्द की तरह मुझ से भिड़ गयी। पर अुस घड़ी में अेक अुन्नत आवेश मुझे अजेय बना रहा था। अपना पूरा ज़ोर लगाने पर भी वह मेरी [2]गिरफ़्त से छूट न सकी। आख़िर लाचार होकर अुसने अपने नोकीले दांत मेरे हाथ में गाड़ दिये ! पर पुण्यप्रकोप के नशे में मुझे अिसकी ख़बर ही कहाँ ? अुस वक़्त तो मैं [3]सरतापा फ़ौलाद बनी हुअी थी।

पता नहीं यह कुश्तम्-कुश्ती कब तक चलती रहती अगर मेरे नाथ वहाँ आ न पहुँचते। अुनका गंभीर स्वर कानों पर पड़ते ही मेरा कोप [4]काफ़ूर हो गया, और तूफ़ानी दिल शांत पड़ गया। मालती के मुँह से अपना हाथ अुचक लिया, और अुसे [5]लहूलुहान् देखकर अपने आंचल में लपेट, अेक बाज़ू खिसक, गयी। निश्चय कर लिया मैं कुछ न कहूँगी। पर अुस लड़ाकन का अभी पेट कहाँ भरा था ? हांपते हांपते चिल्लायी—

"देख लो, अच्छी तरह देख लो तुम्हारी अिस लाड़िली राजकुमारी को ! तुम्हारी—तुम्हारी सहधर्मिनी, सती, देवी, और—और जाने क्या क्या ! अिसने तुम्हारा बड़ा भारी अपराध किया है——रे, नाक ही काट

---

१ दरिन्द=फाड़खाअू पशु २ गिरफ्त=पकड़ ३ सरतापा=सर से पाँव तक
४ काफ़ूर होना=भाग जाना ५ लहूलुहान=खून से भरा

ली है ! और तुम हो, कि बिल्कुल बेखबर बैठे हो ! पर मैं अैसी अंधी-बहरी नहीं—मुझे त कुल की कान प्रिय है, भैया ! अिसी लिये तो अिसे समझाने आयी—बड़ा कुसूर किया, बाबा ! ज़रा देखो तो अुसने मेरी क्या गत बनायी है ?" यह कहकर अुसने [1]अिशारे से अपना फटा वस्त्र और बिखरे बाल बता दिये ।

मेरे नाथ की कोमल आँखें खेद और आश्चर्य से खुली की खुली रह गयीं । वे ज़रा अस्वस्थ होकर बोले : "अरे ?—बात क्या है ?—शर्मिला—?"

अुस प्रेमल आवाज़ में कुछ अुलहने की छटा महसूस करके मैंने चुपचाप सर नवा लिया । हृदय पर खंजर चल गया ।

"क्या ? भला हो क्या ? वह काला-कलौटा व्रज-नाग अिसे भी डस गया है, और क्या ? अुस कम्बख्त राधा ने अिसे भी फाँस लिया है—और क्या ? 'कृष्ण ! कृष्ण ! कृष्ण !' छिः ! ! अिसकी जीभ को अुस [2]मन्हूस नाम की चटक लग गयी है—जब देखो तब कृष्ण ही कृष्ण ! मन अुसी लुच्चेके पीछे भटकता रहता है । जागते कृष्ण का जाप, और सोते कृष्ण के सपने ! न काम ठीक से कर सकती है न काज ! दिन भर अुस कृष्ण को ढूँढ़ती फिरती है—अुसी के मोह में पागल हो रही है ! मुबारक हो तुमको तुम्हारी 'सती', माधव भैया ! भली आयी यह, तुम्हारा कुल अुजियारने !"

---

१ अिशारा=संकेत २ मन्हूस=अशुभ

यह कड़ुवा ज़हर गोया मेरे नाथ की ओर थूक कर अुसने मेरी कलाअी घट पकड़ ली, और मुझको कुटिया की तरफ़ खैंच चली। मेरी जीभ सुन् हो गयी थी, पर दिल बिल्बिला रहा था। मेरे स्वामी का रंजीदा चहरा रह रह कर मेरे तड़पते सीने में वरछियाँ भौंक रहा था। छाती पै आड़ी बाँहें लगाय, स्थंभ के से निश्चल खड़े, वे दुःखभरी आँखों से मेरा मुँह ताक रहे थे। मैं क्या कहती ? बस अपना छूटा हाथ अुनकी तरफ़ लंबा दिया। वे मेरे हृदय का गुप्त भाव ताड़ गये—मेरी बेबसी, मेरी आजिज़ी, मेरी मूक विनती: 'मैं आप की हूँ, मुझ पै शक न कीजिये !' अेक छलांग मार कर वे हमारे साथ हो लिये, और अुनकी भभकती आँखें मेरी आँखों से हज़ारों प्रश्न पूछने लगीं। मैं अुसी दम सब कुछ कह देती, बात साफ़ हो जाती, यह दुःखद क़िस्सा वहीं ख़त्म होकर रह जाता। पर मेरी ननँद को यह कहाँ मन्जूर था ! मेरी बाँह को ज़ोर का झटका दे कर चिंघाड़ अुठी, "चुप रह, निर्लज्ज ! पापिनी ! चुप रह, वरना तेरी बाँह ही अुखाड़ दूँगी !—भाअी, तुम हट जाओ। यहाँ पुरुषों का काम नहीं। हम स्त्रियों के मुआमलों में तुम क्या समझो ? अिस पिशाचिनी का मैं बहुत सह चुकी। अब ज़रा अिसे भी मज़ा चखा दूँ !"

नाथने अुसका कंधा पकड़ लिया, और मुझे छुड़ाने की कोशिश करते करते ज़रा तेज़ हो कर बोले, "मगर—मालती !—"

वह घायल बाघिन की तरह मुड़ी, और अुनका हाथ झटक कर चिल्लाअी, "हट जाओ ! न छेड़ो मुझे ! समझते क्या हो ? अेक-शब्द

भी कहा, तो अिस [1]मर्दूद-की वह गत बनाअूँगी, कि [2]अुम्र याद करती रहेगी ! बड़ी आयी है हम अहीरों पै राज करने ! अिसे पूर दूँगी—भूखी रखूँगी ! कहते हैं ना, कि 'भूख कुंद' बुद्धि की [3]सान ?' तो बस, अब अिसके सयानपन की घड़ी आयी समझ ले ! चलो, हटो !"

यह कहते कहते अुसने मुझे कुटिया के भीतर खेंच लिया, और किवाड़ खट ! से बंद कर दिया । फिर मुझे अिस कोने में पटक कर [4]गुर्रा गयी : "ख़बरदार, कम्बख़्त, जो यहाँ से ज़रा भी हटी, या चूँसे चाँ तक की !"

अब यहीं पड़ी पड़ी रो रो कर तुझे याद कर रही हूँ, मा ! घाट पै जाने की, अपनी सखियों से मिलने की सख़्त मनाअी है । किसी से बात तक करने की अिजाज़त नहीं—नाथ से भी नहीं ! क्या सितम किया है अुस माल्ती ने ! वे तो बिगड़े थे । नहीं मानते थे ! पर माल्ती ने अपने बाल नोच नोच कर, छाती पीट पीट कर प्रतिज्ञा ले ली, कि "अिधर तुमने अिस पापिनी की तरफ़ अेक नज़र डाली, और अुधर—तुम्हारे गले की क़सम—मैं ने जमुना में फाँद कर प्राण दिये !" अब अिस पागलपन का क्या अिलाज ? वहाँ माताजी विलाप करने बैठ गयीं, यहाँ पिताजी ने बड़ी आजिज़ी से समझाया, "ज़रा धीरज रखो, बेटा ! माल्ती का सर ठिकाने आ जाय, फिर जी में आय सो करना ।"

---

१ मर्दूद=निकम्मी २ अुम्र=जीवन ३ सान=हथियार तेज़ करने का पत्थर
४ गुर्राहट=सिंह अि. की कोप बोली

बेचारे नाथ वचन देने पर मजबूर हो गये, मगर—विष्णु की कृपा !—बहुत ही झुंझलाकर और नाराज़गी के साथ !....बस, अिसी से कुछ दिलासा मिलता है। ख़ैर। यह घड़ियाँ भी बीत जायँगी। श्री राधे, मुझे धीरज प्रदान करें....!

दूसरी सुबह

अुफ़ ! मेरा हाथ बहुत दुखता है। क्या करूँ ! और जिस्म की हड्डी हड्डी कुछ अिस तरह टूट रही है, कि न अुठने में कल है, न बैठने में चैन, और न सोने में आराम। यह सब तो ख़ैर, सह सकती हूँ—पर अिस दिल की [1]अीज़ा को क्या करूँ, जो घड़ी घड़ी, पल पल मुझे [2]बेक़रार किये देती है ?....हाय ! ओ नाथ ! आप की अेक नज़र, अेक ज़री-सी मुसकान, अेक अधूरे शब्द के लिये मैं मरी जाती हूँ ! अनेक दुःखद विचार चित्त को भ्रमित कर रहे हैं....अुस कुटिल मालती की बातों में आ कर नाथ मुझसे फिर गये तो ?....अुनसे बोलूँ भी कैसे ? समझाअूँ कैसे ? माताजी ने मुझसे भी वचन ले लिया है कि मैं नाथ से न बोलूँगी। वह बेचारी मालती के चोंचलों से बहुत घबराती हैं ! पिताजी को मुझ पै दया आती है ज़ुरूर, पर व्यक्त करने की हिम्मत नहीं। कभी कभी करुणाभरी आँखों से अेक तिरछी निगाह मुझ पै फेंक देते हैं, और बस। मालती के क़हर से सभी थर थर काँपते हैं ! (ना ! मैं नहीं ! मेरी रगों में तो योद्धाओं का ख़ून बहता

---

१ अीज़ा=वेदना २ बेक़रार=अधीर, अस्वस्थ

है—अैसी हज़ार मालतियाँ मुझे क्या डराअेंगी !) हाँ, अगर डर है तो अिसका, कि मेरे किसी शब्द या हरकत से यह भड़कती कलहाग्नि कहीं और भी प्रज्वलित न हो जाय। बस अिसी कारण मैं अपने कोने में चुपचाप पड़ी रहती हूँ, टखने रस्सियों से जकड़े हुअे, प्यासा कंठ पानी की बूँद को तरसता हुआ, हृदय निरन्तर रुदन करता हुआ........

चल चल, शर्मिला, अब सँभल जा ! निराशा निर्बलों की खुराक है—तेरे काम की नहीं ! पगली, कसौटी की घड़ी मं अिस तरह हाय हाय करके अपने अजेय पूर्वजों को लजा नहीं, जो मृत्यु तक से मैत्री साध कर रण-मैदानों में प्रसन्नमुख अुसका स्वागत किया करते थे !....यह तो आँखें रो रही हैं—तो भले, रो लें ज़रा बेचारी ! तेरा जिस्म कमज़ोर हुआ तो क्या हुआ ? बेबस हुआ तो क्या हुआ ? चौदह ब्रह्मांड में वह रस्सी कहीं बुनी नहीं गयी जो तेरे आज़ाद आत्मा को बांध सके ! तूने अपनी हिम्मत क़ायम रखी, तो और तो और, वह ज़ालिम कंस भी तेरा क्या बिगाड़ सकता है ?....सच है। मगर—यह क़ैद कबतक रहेगी आख़िर ?—अरे वह तो रहेगी तबतक रहेगी ! तू अुसका सोचती ही क्यों है ? गुरुजी ने क्या कहा था ? "तुम ही अपने को बनाते हो। तुम वही हो जो अपने को मानते हो। अपने मन को बस कर लो, तो बस, बेड़ा पार है !" तो अब मैं अपने को क़ैदी न मानूं देखो ! मैं क़ैदी कहाँ हूँ ? अिस बेबस जिस्म को छोड़ दूँ यहाँ : मैं तो चलूँ वृंदावन ! वृं—दा—व—न—! ओ जादूभरा शब्द ! तेरे अुच्चारण ही से मैं मुक्त हो गयी ! शांत और प्रसन्न हो गयी !.... आहाहा ! प्रेम से

मुस्कराते श्री सूर्य नारायण की कोमल किरनों में वृंदावन क्या ही जोबन दिखा रहा है ! नन्हे नन्हे बालसमीर फूलों और पत्तों के साथ क्या मज़ा कर रहे हैं ! ओ, यह रंगबरंगी तितलियाँ ! बस अीश्वरी कला का चमत्कार ! देखो तो, गोया व्योम-विहारी पुष्प ! हवा को अीर्ष्या हुअी कि धरती को तो फूलों से सजाया, और मुझे वैसी ही [1]बेरौनक़ क्यों रखी ? तब भगवान ने दया खा कर अुसे फूलपखेरू बख़्श दिये....भगवान सा चित्रकार कौन होगा ? कारीगर कौन होगा ? व्रज की गहरी हरियालियों पर अुन्होंने अिन महकते, मलकते, बहुरंगी फूलोंसे क्या अद्भुत तरहें बना रखी हैं ! बस रंग की रेलमछेल ! मानो हज़ारों रंगधनु गोकुल के प्रेम में पिघल कर अुसपर न्योछावर हो गये हों....कअी लोग भगवान को 'रंगनाथ' कहते हैं । मैं अब समझ गयी क्यों....मगर 'रंगनाथ' ही क्यों ? अुनकी कला की कोअी हद भी है ? रंग, रूप, रस, सुवास ! बस जादू की पुड़िया में जादूकी पुड़िया !....देख, देख अुन मख़मल-क़दम, लजीले-नयन मृगों को ! जो शांत निकुंजों में फुरतीली छायाओं की तरह झलक रहे हैं, या आनंद से तृणांकुर कुतर रहे हैं । लो अब-चौंके ! (शायद हमारे नूपुरों की छनछनाहट से ?) ओहो ! माथे किस आनबान से अुछालकर [2]फ़िरार की तैयारी कर रहे हैं !—छलांगता मृग भी कुछ अजीब दिल-फ़रेब चोज़ होता है ! मानो शून्य को चौंकाता अेक संगीत-फ़ौवारा—नीरव शांति को बींधती अेक लंबी, रसीली मींड !....आहा ! तेरी ज़िन्दादिल सहेलियोंके विविधरंगी वस्त्र सूर्य के प्रकाश में कैसे भड़क अुठे हैं !

---

१ बेरौनक़=निस्तेज; फीकी २ फ़िरार=भागदौड़

अुनके आँचल शीतल हवाओं में लहरा रहे हैं—शरारतें कर रहे हैं ! कभी तो जिस्म से चिमट जाते हैं, और कभी गुब्बारे बनकर बेचारी गोपियों को कहां से कहां अुड़ा जाते हैं ! क्या मज़ा है !....यह गोपियाँ भी सचमुच फूल सरीखी ही हैं ! कितनी सुकुमार, कोमल, निर्मल और रसिक!.... (अरी, भूल जा अपने ज़ख़्मी हाथ को, अपनी पीड़ित कला-अियों, अपने छिले टख़्नों को ! न सोच अपने सूखे कंठ का, अपने भूखे पेट का ! शुक्र कर, कि मालतीने आख़िर दया खा कर अुनकी रस्सियां तो खोल दीं !)....चल! कल्पना-विमानपर सवार हो कर जमुना-तट की सैर कर आयँ.... भअी वाह! नदी की मरकत लहरों में [1]खिलन्द्रा सूरज कैसी सुनहरी खलबली मचा रहा है ! पानी कितना प्रसन्न—शीतल है ! हम जो अुसमें गागर डुबोती हैं, तो हंस कर—या चिढ़ कर ?—कैसी मीठी कुलकुल करता है ? पर हमसे बातें करने नहीं रुकता—बहा ही जाता है, अनंत जीवन की तरह, अपने प्रियतम से मिलकर अुसमें लीन होने.......

तूने कैसी सुंदर सुंदर पुष्प-मालाअें गूँथी हैं ! नाथ का वह प्यारा स्मित याद है, जब वे बैठे गौअें चरा रहे थे, और तूने पीछे से दबे पांव जाकर अुनके कंठमें सुगंधित बकुल-माला डाल दी ? और—अरे, राधाजी का ध्यान धर ! वह तेज-मूर्ति, जिनकी गूढ़ आंखों में आलम भर का ज्ञान, माधुर्य और प्रेम समाया है; जिनकी मंद, मोहक मुसकान अुनको अेक साथ ही नारी, देवी और माता जता देती है.......कृष्ण की गुरु !

---

[1] खिलन्द्रा=सुलील; खेल का शौक़ीन

कृष्ण की—कृष्ण !... अँ ! यह क्या ?....अिस अुपोषण से मेरी अिन्द्रियाँ क्या अैसी सूक्ष्म हो गयी हैं, कि कान अब शून्य में भी शब्द सुनने लगे ?....क्या ?.......बाँसुरी ? !!....नहीं नहीं ! मैं ख़्वाब देख रही हूँ ! जगत की स्थूल वंशियों में यह दिव्य मधुरिमा कहाँ ? अे लो :—फिर से वही जादूभरी धुन !.......जमुनाके अुस पार से आ रही है....मगर बाँसरी के सुर अितनी दूर तक पहुँच सकते भी होंगे ?.... रे रे ! आनंद तले दिल पिसा जाता है ! मैं भला मरकर अिन्द्रलोक में तो नहीं आ गयी ? यह मुरली का बजैया तो गंधर्वों का भी अुस्ताद मालूम होता है !....मगर नहीं—हमारी गाय भी सर अुठा कर सुन रही है। और वह हिरन, जो अपना चरना भूल कर जमुना की ओर देख रहे हैं—वहाँ, जहां से मुरलीनाद गूँजता, लहराता आ रहा है.... अुफ़ !....मैं जाअूँगी ! मैं वहाँ जाअूँगी. जहाँ यह विश्वमोहनी वंशी बज रही है ! मैं अुस जादूगर के दर्शन करूँगी, जो अेक सूखी लकड़ी में यह ज्वलंत जान फूँक रहा है !....ओ ! अिस देह-पिंजर को कैसे तोड़ फोड़ दूँ ?....हाय रे ! बंद हो गयी ! बाँसुरी बंद हो गयी !.... दुनिया फिर ग़फ़लत की नींद में पड़ गयी। गाय ने जमुना से मुँह मोड़ लिया, मृग फिर चरने लग गये। [1]ख़रगोश, गिलहरियाँ, पंछी— सभी अपने अपने कामों में फिर [2]मस्रूफ़ हो गये। पेड़, लताअें फिर भटकालू पवन के साथ [3]गैल करने लग गयीं। आकाश के सुनसान रन में बादलों के कारवानों ने फिर अपनी धीमी मुसाफ़री जारी कर दी। वह बाँसुरी बजते ही सारे विश्व पर अेक सन्नाटा सा छा गया था : अब

---

१ ख़रगोश=ससा, खरहा २ मस्रूफ़=मशग़ूल; व्यस्त ३ गैल=निर्दोष छेड़ छाड़

फिर अुस में हलचल आने लगी है। मगर फिर भी, वह दिव्य चैतन्य जाता रहा, जो मुरली के मस्ताना सुरों ने घड़ी भर के लिये अणु अणु में जाग्रत कर दिया था....

'मूसीक़ी ! क्या जादूअी ताक़त है ! यह मालूम होता है, भगवान् खुद अपने प्रेम-संदेस मूसीक़ी के ज़रीअे भेजते रहते हैं। बल्कि मूसीक़ी को अुन्हीं की आवाज़ क्यों न माना जाय ? जैसे ताज़े-खिले पुष्प अुनके प्रेम-स्मित हैं, और समुद्र अुन की अनंत कल्पना-शक्ति का विलास है, और ब्राह्ममुहूर्त का आकाश अुन की अखण्ड समाधि की छाया है.... मूसीक़ी ! नादब्रह्म !....अे काश मैं भी गा सकती ! काश अपने अिस घायल हृदय को खलबलाते स्वर-स्त्रोत में बहा दे सकती !.......क्यों नहीं ? सोच, शर्मिला, सोच ! यह प्रेरणा कहीं सटक जाने न पाय ! तुझे बोलने की मनाअी ज़ुरूर है, पर गाने से किसने रोका है ? नाथ तुझसे भले बातचीत न कर सकें, पर तेरा गायन तो सुन सकते हैं ना ? ! ज़ुरूर ! ज़ुरूर ! यह अच्छी सूझी ! मैं अेक गीत तैयार कर लूँ। कल का दिन सारा घराना मेले में होगा। तू भी तो जानेवाली थी—खैर ! परवाह नहीं....मगर नाथ भी जायँगे ? ना ! मेरे नाथ थोड़े ही मुझे दिन भर भूखी, प्यासी और तन्हा रहने देंगे ? हरगिज़ नहीं !

दूसरे रोज़

कुटिया सुनसान हो गयी है। बस अेक कोने में यह बेजान क़ैदी पड़ी पड़ी अपनी दुःख की घड़ियां गिन रही है। नाथ आवेंगे ? बोल,

---

१ मूसीक़ी=संगीत; सुनाद २ ज़रीअे=द्वारा

पवन, वोल तो ! नाथ आवेंगे ?....तेरे शीतल स्पर्श में क्या बात है, जो दिल हंस अुठता है: "वेशक आवेंगे !" ? हे तरुवर-गण, तुम झूम झूम कर अिस ओर क्यों झुक रहे हो ? मेरे कानों में कोअी मीठा [1]राज़ फूँकना है, क्या ? अच्छा, कहो भला—नाथ आवेंगे?....बस। मैं समझ गयी। तुम्हारे शानदार आशीर्वाद का शुक्रिया है....ओ दिल, तू क्यों अिस तरह अुछल-कूद कर रहा है ? सारी कुदरत से अेक होकर क्या तू भी [2]साख भर रहा है, कि "हाँ हाँ ! वे ज़ुरूर ही आवेंगे !" ? ठीक !....पौ फटते ही घर से चले थे, वस अब आ ही रहे होंगे। और न आअें तो ?....तो क्या?....मैं समझ लूँगी कि यह दिले [3]शैदा निरा वेवकूफ़ है, और सारा ब्रह्मांड अेक क्रूर धोखावाज़ी का खेल है, और बस........

रे मन, यों अधीर न हो ! चल, अुस गीत का रटन करें। अुसकी राह तो ठीक जम गयी है, और लय भी [4]ख़ातिरख़्वाह है, पर कुछ [5]रियाज़ की ज़ुरूरत है....ओहो ! आ गये, मियाँ मिठ्ठू ? यह तोता बराबर मेरे पास पास रहा है। बड़ा ही प्यारा है ! अब नाथ की खोज में चारों ओर अुड़ान लगा रहा है। अुन्होंने अिसे अेक वाड़ तले पड़ा पाया था: लहूलुहान, और [6]नीमजान। अुसे संभालकर ले आये, बड़े प्यार से अुस का अिलाज किया, और खूब अच्छी तरह अुसे पाला पोसा। अुसे अपना नाम कहना भी सिखला दिया: 'माधव'। अब यह हालत है, कि

---

१ राज़=भेद २ साख=साक्षी; गवाही ३ शैदा=प्रेम-दीवाना -
४ ख़ातिरख़्वाह=संतोषजनक ५ रियाज़=अभ्यास ६ नीमजान=अधमुवा

कहीं से भी नाथ अिसे दीख पड़े, और अिसने "माधव ! माधव !" की हुलसित चिकारों से निकुंजों को गूँजा दिया ! मेरे नाथ का दिल बड़ा ही कोमल है, सच ! कोअी आश्चर्य नहीं कि यह तोता भी अुनका [1]असीरे मुहब्बत बना रहता है....अुस मृग का भी कुछ अैसा ही क़िस्सा बना । ग़रीब की टांग टूट गयी थी । अुसके भाग्य से वह नाथ को मिल गया । अुसे गोदी में अुठाकर यहाँ लाये, अुसकी हड्डी को बिठाकर अुस पै पट्टी बट्टी बाँध दी, और घर के बच्चे की तरह अुसकी [2]तीमारदारी करते रहे । अब वह हिरन हमारी कुटिया के क़रीब ही चरता फिरता है, और अपने [3]मुहसिन की आवाज़ की प्रतीक्षामें अुसके कान सदा खड़े के खड़े रहते हैं....वन की चिड़ियाँ, गिलहरियाँ और सभी नन्हे बड़े [4]चरिन्द-परिन्द अुनको अपना मित्र मान गये हैं, और बिल्कुल ही बेधड़क अुनके पास चले आते हैं....मगर अब मैं अधीर हो चली ! अितनी देर क्यों कर रहे हैं ?....कुछ भी हो : वे आवेंगे ज़ुरूर जाते समय अुनकी आँखें मेरी आँखों को वचन दे गयी थीं....ओहो ! आ गये ! "माधव ! माधव ! माधव !" ओ मेरे मिट्ठू ! कल्याण हो तेरा ! तेरी बलाअें लेलूँ ! जी चाहता है तुझे अेक सुवर्ण-मंदिर में बिठा कर अुम्रभर तेरी पूजा करती रहूँ !....हाँ नाथ ही हैं । यह अुन्हींका क़दम है....वह भागा मृग भी !—(रे भाग्यशाली ! और मैं यही पड़ी हूँ !)— भअी वाह ! किस [5]अन्दाज से चौकड़ियाँ भरता, किसी

---

१ असीर=ग़ुलाम, २ तीमारदारी=बीमार की सेवा संभाल
३ मुहसिन=अुपकार (अेहसान) करने वाला ४ चरिन्द परिन्द=पशुपक्षी
५ अन्दाज़=अदा; बांकपन

पवन-प्रेरित पत्ते की तरह अुड़ा जा रहा है अुन की ओर ! जय हो विष्णु की !—माता सरस्वती, अब आप मेरी ज़ुबान में अुतर आअिये। मदन ! हे प्रेम-देवता ! तू मेरे टूटे फूटे शब्दों में अपना जादू भर दे। ओ संगीत-देवता ! मेरे कंपित कंठ में बैठ कर अब तुम ही गाने लगो....

देर से

[1]सुरूर ने अिस जीव को अैसे पंख दे दिये, कि वह स्वर्ग तक अुड़ा जा रहा है; और जिस्म को अैसी ताक़त, कि आख़री दो रोज़ की [2]मशक़्क़तें स्वप्न बन गयीं ! हे दयालु भगवान ! तुम्हारा कितना, कितना अुपकार मानूँ ? जय हो तुम्हारी ! सदा, सदा जय हो तुम्हारी ! कि तुमने अिस दीन की प्रार्थना सुन ली, और अुस के सभी मनोरथ पूरे कर दिये....मेरी युक्तिने सचमुच रंग रखा ! मैं स्वप्न में भी कल्पना न कर सकती, अितनी सफल हो गयी !....

स्वामीनाथ के क़दम सुनते ही मैं स्वस्थ हो बैठी। फिर अपना सारा बल अेकत्र करके, पूरे दिल से परमात्मा की आराधना कर के, मैंने अपना गीत शुरू कर दिया। पहले ही स्वर से आहट रुक गयी, गोया आश्चर्य ने क़दम थाम दिया हो : फिर धीमे धीमे क़रीब आने लगी।

मैं गाती रही।

---

१ सुरूर=आनंद २ मशक्क़त=कष्ट

"ओ शर्मिला, तेरी दशा अैसी भला क्यों कर हुअी ? ।
"शूरवीर योद्धाओं की पुत्री ! आज क्यों कायर हुअी ? ॥
"तेरे बुजुर्गों का कभी माथा झुका था शर्म से ? ।
"तन, धन, सभी कुछ त्यागते—डगते नहीं निज धर्म से ! ॥
"अुस कुल के निर्मल चन्द्रमा में कालिमा क्या तू भअी ? ।
"पापी ! विसारा धर्म क्या ? निज शील को छोड़ा सही ? ॥"

यह गाते गाते मेरा दिल भर आया, और आवाज़ लरज़ अुठी। अुसी घड़ी मेरे नाथ दरवाज़े तक आ पहुँचे, और वहीं स्तंभित हो गये। अुनके दीदार से मेरा जोश सवा हो गया, और मैं अपने भावों में लीन होकर किसी अनोखे आवेश में गाने लगी :

"गोकुल-दुलारे कृष्ण की परवा ही क्या तुझको भला ? ।
"वह कौन है ? क्या है ? किधर है ?—जान ले तेरी बला ! ॥"

(नाथ चौंके। मैंने अुन पै नज़र जमा दी। देखा, अुनकी आँखे तेज़ हो रही हैं, [1]रुख़्सारों पै [2]सुर्ख़ी दौड़ गअी है। तब आवाज़ में तिरस्कार लाकर मैं गाने लगी) :—

"कहते हैं सुंदर हैं। मदन हों ! रे, मदन के बाप हों ! ।
"सारे जगत की ख़ूबियों की खान ही वह आप हों—॥
"तेरे हृदय के गुप्त मंदिर में गुज़र अुनका कहाँ ? ।
"प्रीती-सिंहासन पै विराजे माधवा प्यारे जहाँ ! ॥

१ रुखसार=गाल २ सुर्खी=लाली

“हा माधवा ! ओ प्राण के नाथा ! मेरे आधार तुम ! ।
“जन्मो-जनम से मेरे सुख औ दुःख के भागीदार तुम ! ॥

“मेरे नयन का नूर तुम ! मेरे हृदय की तुम गती ! ।
“स्वामिन् ! तुम्हीं सब कुछ—पिता, माता, सखा, बंधु, पती ! ॥

“कहते हैं मैंने दे दिया धोखा तुम्हें ! अब क्या कहूँ ? ।
“जो सत्य हो [1]अिल्ज़ाम, तो सीधी नरक ही जा बसूँ ! ॥

“यह दिल नहीं भूला तुम्हारे वह पराक्रम, वीर नर, ।
“आये बचाने जब हमें, गंभीर, प्रेमल, औ निडर ! ॥

“बरसों बरस बीते, कि मेरे परपितामह ने कृपा ।
“की थी तुम्हारे परपितामह पर—तुम्हें यह याद था । ॥

“रिपुओं की [2]साज़िश खोज ली, राजा को क्रोधी जान कर ।
“आये पिताजी को बचाने, अुन को अपना मान कर । ॥

“परवा नहीं की तन की, धन की, मान की, अपमान की— ।
“तुम को पड़ी थी अेक भोले वृद्ध नर की जान की ! ॥

“धोखा दिया तूने अुन्हींको, क्या ? जो चुपके रात में ।
“आये सदन में लेके कितने भेख अपने साथ में, ॥

“औ गुप्त रस्ते से भगा कर तुम को नगरी से परे ।
“लाये । अरु जिस दम थकन से तू गिरी जाती थी, रे, ॥

---

१. अिल्ज़ाम=आरोप २. साज़िश=छिपी कोशिश

"तुझको अुठा ली गोद में, ज्यों मात अपने बाल को ! ।
"होने न दी तकलीफ़ कुछ भी तुझ दुःखीं नि'ढाल को । ॥
"शूरों की पुत्री ! याद कर—जब राह में डाकू मिले, ।
"क्या मेघ की सी गर्जना ! तुझको लिटा दी घास पे, ॥
"औ हाथ में डंडा लिये, अिक मत्त हाथी के समां ।
"लपके सभों पै अिस तरह, वे लेके भागे अपनी जाँ ! ॥
"भय टल गया । वह वीर फिर माता बने । किस प्यार से ।
"तुझको लिये कोसों चले ! थाके नहीं तुझ भार से । ॥
"लाये तुझे गोकुल में; पुष्पों की सुगंधित माल से ।
"कर ली तुझे अपनी, औ खुद तन मन से तेरे बन गये । ॥
"अैसे तो तेरे नाथ हैं ! ओ शर्मिला, यह सत्य मान— ।
"वे सब नरों में श्रेष्ठ, औ तू सब स्त्रियों में भागवान ! ॥"

नाथ के कंपित लबों से अेक ज़ोर की पुकार फूट निकली । अेक ही फलांग में वे मेरे क़रीब आ गये, और [1]दुज़ानू बैठ गये । साँस तेज़ी से चल रहा था, आँखें डबडबाओी हुओी थीं । रुक रुक कर, टूटती आवाज़ से बोले, "शर्मिला ! शर्मिला !—ओ शर्मिला !"....

अुनकी विह्वलता देख कर मैं आप बिल्कुल शांत हो गयी । दिल अेक गहरे, अेक अपार आनंदका समंदर बन गया । मैं मुस्कुरायी, और कुछ [2]शरारत से गाने लगी :

---

१. दुज़ानू=घुटनोंपर   २. शरारत=चुलबुलेपन

"नाथ, भूले तुम वचन क्या, मालती को जो दिया ? ॥"

नाथ हलकी सी मुस्कुराहट न रोक सके, पर अुनके तेवर पे बल आ गये। चिढ़कर जवाब दिया, "मालती जाय पड़े कुँवे में !" (फिर सँभल कर), "वह वचन थोड़े ही था, प्रिये ? वह तो अेक वक़्ती अुपचार मात्र था....ले, तुझे छुड़ा तो दूँ, मेरी नन्ही ज़ख़्मी चिडिया !....रे रे ! तुझ पे कितना जुल्म हुआ है !....मगर मैं मजबूर था, शर्मिले ! मालती के अिन दौरों को मैं जानता हूँ। अुस वक़्त जो मैं अुसे शांत न करता, तो वह यक़ीनन् प्राण दे बैठती, या पागल हो जाती। अुसे, और सारे कुटुंब को, भयानक आपत्ति से बचानेके लिये ही मैंने तुझे और अपने को कुरबान कर दिया....अुफ़, यह दो दिन !—क्या नरक !—तू क्या जाने !....मेरी शर्मिला ! मेरी सहधर्मिणी ! अब मुझ पे दया कर—अिस सारी दुर्घटना को भूल जा.... अच्छा ?....ले ! तू आज़ाद हो गयी। (मालती की बेड़ियों से : मेरी बेड़ियों से नहीं !!)....चल, अब तुझे कुछ खिलाअूँ-पिलाअूँ...."

"मगर—नाथ— !"

"ना ना ! अब अिस वक़्त मैं 'अगर' सुनूँगा न 'मगर' !" नाथ मुस्कुराये, पर अुन की आँखों में आंसू थे। फिर मेरे हाथों को सहलाते सहलाते प्यार से बोले, "अब तुझे कुछ खाना होगा। अुस के बाद मैं तुझे ज़रा दाब दूंगा—(तेरा अंग अंग टूट रहा होगा, ग़रीब बेचारी !)—और अुस के बाद—और अुस के बाद तू मुझे [1]तफ़सील से बता देना, यह झगड़ा अुठा कैसे ?"

---

१. तफ़सीलसे=सविस्तर

अितना कह कर वे अुठे, और रस्सियों को गुस्से से अेक कोने में पटक कर मेरे लिये माखन रोटी ले आये, और आग्रह पूर्वक मुझे अपने हाथ से खिलाने लगे। (मैं राज़ी क्यों न होती?) और जब मेरी जान में कुछ जान आयी, तो अुन्होंने मुझे अपनी गोदी में लिटा दिया, और तब मैंने सारा क़िस्सा अव्वल से आख़िर तक अुन्हें कह सुनाया। सुनते सुनते अुनका चेहरा सख़्त हो गया, और आँखें सुलग अुठीं। पर बोले कुछ भी नहीं: सिर्फ़ मेरे हाथों को और अधिक नर्मी से सहलाने लगे, और अेक दो बार ठंडे सांस भर कर सर हिला दिया। और जब वह दुःख-कहानी ख़त्म हुअी, तो मैं अुठ कर अुन के सामने दुज़ानू हो बैठी, और हाथ जोड़ कर अुन के चरणों में सर नवा दिया। फिर गहरे निःश्वास के साथ मैंने कहा, "महाराज! मैं क्या कहूँ? किन अल्फ़ाज़ में अपने अपराध की क्षमा माँगूं? मेरे दो अविचारी शब्दों ने सारे ही घराने को किस आफ़त में डाल दिया? हाय! मैं अपने दुःख को कैसे बयान करूँ?....पर मुझे क्या ख़बर थी? मेरे तो सपने में भी ख़ियाल न था कि आप का कुटुंब श्री राधा और अुन के शिष्य कृष्ण को अिस घृणा की नज़र से देखता है, वरना वह नाम लेने से पेशतर ही मैं हज़ार बार अिस ज़बान को काट लेती—"

नाथ बीच में से बोल अुठे, "न न! यह बात नहीं है।"

मैं ठहरी। वे देर तक बड़ी गंभीर आँखों से मेरा मुँह तकते रहे। फिर:

---

१. अल्फ़ाज़—शब्द

"आ शर्मिला, मेरे सहारे बैठ जा। तू बहुत थक गयी है। कैसी ज़र्द ज़र्द हो रही है!....हाँ! अब कह—राधाकृष्ण के बारेमें अिन गोपियों का क्या अभिप्राय है?"

मैंने गांभीर्य के साथ जवाब दिया: "महाराज, मैंने जो देखा सुना है, अुस पर से तो यही गुमान होता है कि श्री राधा सभों को बेहद प्यारी हैं, और साथ ही बेहद पूज्य भी। कअी लोग अुनकी अीर्ष्या ज़ुरूर करते हैं, मगर वह सिर्फ़ अुनकी अपूर्व भक्ति के लिये—वह अीर्ष्या भी तो अेक तरह का पूजन ही है! और अैसा क्यों न हो? कि वह हैं ही अैसी! अुनके दीदार मात्र से दिल [1]शाद और [2]रौशन हो जाता है, और अुनकी नज़दीकी में भगवान भी बहुत नज़दीक महसूस होते हैं:"

"अच्छा!" नाथ की आँखें और भी गहरी हो गयीं। "और—वह कृष्ण?"

लो! आ गयी घड़ी कसौटी की! मन-ही-मन मैंने कमर कस ली, गोया। अेक अेक शब्द को तोल तोल कर अुच्चारते मैंने जवाब दिया:

"कृष्ण....कृष्ण?....माअी यशोदा के प्राण, नंद बाबा के हृदय-दुलारे, गोपियों के अिष्टदेव, समस्त गोकुल के जीवनाधार—? अुनका तो क्या कहूँ, नाथ? मैं अुन्हें बिल्कुल नहीं जानती—अबतक तो अुन्हें देखा भी नहीं है! पर हाँ, मेरी सहेलियाँ हमेशा अुनका ज़िक्र

---

१ शाद=खुश २ रौशन=प्रकाशित; अुज्ज्वल

करती रहती हैं—(सच पूछिये, तो अुन्हें तो कोअी और बात सूझती ही नहीं !)—और—अुनके नाम ने—मेरे भी दिल को—कुछ अजब तरह—वश-सा कर रखा है—"

"आह !"

नाथकी आवाज़में कुछ अैसा दर्द था कि मैं चौंक अुठी। अुनके स्थिर शरीरमें अेक सूक्ष्म तड़प महसूस हुअी, गोया किसीने अंदर ही अंदर अुनका दिल मसोस लिया हो। अुमड़ते प्रेम को ज़बरदस्ती थामकर मैंने अेक कोमल दृढ़ता के साथ कहा :

"प्रियतम, मेरी बात सुनिये। गोपियों को अपने अपने पतियों से कुछ कम प्यार नहीं है। पर कृष्ण के लिये अुनके दिलों में कुछ अनोखा ही भाव है, जिसे मैं अबतक समझ नहीं पाअी हूँ। पर अितना तो ज़ाहिर है, कि यह भावना बिल्कुल शुद्ध, निडर और हर तरहसे अुन्नत है। कृष्ण को तो यह अीश्वरका अवतार ही मानती हैं, और अुन्हें अुसी तरह पूजती हैं। अब, जहाँ तक मैं समझ सकी हूँ, यह दोनों प्रेम—यानी पति-प्रेम और कृष्ण-प्रेम—जुदे जुदे प्रकारके हैं, और अेक से दूसरे को ज़रा भी बाधा नहीं होती। तिसपर भी, अिन दोन में कोअी गाढ़ और गूढ़ संबंध है सही, क्योंकि अेक सखी को जब हम 'पति-पागल' कह कर चिढ़ाने लगीं, तो अुसने कहा, 'अुनकी आँखों में मुझे कृष्ण नज़र आते हैं !' "

नाथ ने ज़रा सख़्ती से कहा, "तब तो वह कृष्ण को चाहती है, न अपने पति को।"

"नहीं नाथ ! अैसा नहीं है। महाराज—मैं आपको कैसे समझाअूँ ? मगर यक़ीनन् अैसा नहीं है ! अुल्टा, अुसकी कृष्ण-भक्ति अुसके पति-प्रेमको अुभारती रहती है, और अुसका गूढ़, निःस्वार्थ, निर्मल पति-प्रेम अुसकी कृष्ण-भक्ति को और भी शुद्ध और अुज्वल बना देता है। भगवान जानें यह कैसे होता है ! पर यह होता है सही, अिसमें ज़रा भी शक नहीं।"

नाथ ने यह सब बड़े ग़ौर से सुना, और कुछ देर अुस पे मनन करते रहे। ज्यों-ज्यों गहरे अुतरते गये, त्यों ही त्यों अुनका असंतोष बढ़ता गया। आँखों में घटा छा गयी, तेवर पे बल आने लगे। मेरा दिल धड़कने लगा। न समझे तो ? यह विषमय शंका जड़ पकड़ गयी तो ?—

अिस तरह कअी घड़ियाँ बीत गअीं। नाथ ने अेक बार सर हिलाया, गोया अपनी अुलझन को माथे से झटक दे रहे हों। फिर गहरे विचार के धुंध से निकल कर कुछ परेशानी से बोले, "तो तेरा कहना यह है, कि यह कृष्ण-प्रेम पति-प्रेम को बाधक नहीं ? मगर यह कैसे—? शर्मिला, शर्मिला, मैं यह कैसे समझूँ ? कैसे मानूँ ?"

अुनका बेबस विषाद मुझसे सहन न हो सका। "नाथ !" अुच्चार कर मैं रो पड़ी।

"प्रिये, प्रिये, रो नहीं ! मैं कहाँ कहता हूँ—? मगर—शर्मिला, तेरे नयन सत्य के निर्मल सरोवर हैं, तेरा ललाट पावित्र्य और आत्म-विश्वास से अुज्वल है। मैं तुझे साक्षात् देवी मानता हूँ—मगर मैं

करूँ क्या ? कि तेरी बात कुछ समझ में ही नहीं आती !....अच्छा, बस अितना बता दे। यह सब जो तूने कहा, सुना-सुनाया कहा ? या तू खुद भी अिसे मानती है ?"

"मानती हूँ, प्रभो ! अक्षर अक्षर, और पूरे दिलसे !"

"ठीक !—तूने कृष्ण को देखा तो नहीं है, पर—अुनका कुछ तो असर तुझपर भी पड़ा है, क्यों ?"

"जी—पड़ा तो है !"

"और फिर भी—तू मुझे अुतना ही चाहती है जितना पहले चाहती थी ?"

मैंने भर जोश से [1]फ़ौरन् जवाब दिया : "महाराज, ज़बान [2]नाक़िस है। आप मेरी आँखों से ही पूछ लीजिये !"

यह कहकर मैंने दृढ़ताके साथ सीधी अुनकी आँखसे आँख मिला दी। पता नहीं वे कितनी देर तक मेरे अंतःकरण की गुप्तसे गुप्त गहराअियों की तलाशी लेते रहे....फिर— मानो किसी जादू से !—अुनका चेहरा आनंद से भभक अुठा, आँखें फिर साफ़ और रौशन हो गअीं। अुन्होंने मुझे सीनेसे लगा लिया, और सहर्ष बोले,

"मुझे तुझ पर विश्वास है ! तेरी बात भले ही समझ न सकूँ—तुझ पर तो मुझे दिलोजान से विश्वास है, शर्मिला, और रहेगा : मरते दम तक—और अुसके बाद भी !"

---

१ फ़ौरन्=अुसी दम २ नाक़िस=बलहीन

दूसरे रोज़

कल नाथ और मैं बड़ी देर तक बातें करते रहे, और हमारे आत्मा अेक और अभेद्‌य हो गये। वैसे तो शुद्‌ध प्रेम का रेशमी डोरा काफ़ी मज़बूत होता है, मगर शंका या [1]ग़लतफ़हमी के झटके से टूट भी सकता है। पर दिल को दिमाग़ का टेका मिल गया, प्रेम के साथ समझ भी रही, तो वही रेशमी डोरा फ़ौलाद का तार बन जाता है—बस ! फिर कोअी ताक़त अुसका नाश नहीं कर सकती....

हृदय के पट खोलकर अुसके छिपे ख़ज़ाने नाथ को दिखला देने में मुझे जो गूढ़ और मीठा आनंद मिला है, सो मैं कभी, कभी नहीं भूल सकती।

मैंने अपने पूर्व-जीवन का सारा हाल अुन्हें सुना दिया, और जब क़िस्सा ख़त्म हुआ तो वे मुस्कुराअे। बोले,

"अिसमें नया क्या है, भला ?"

मैं हैरान ! "नया नहीं ? !! क्या कहते हैं, महाराज ? !"

नाथ हँसे। "हाँ ! मैं सब कुछ जानता हूँ। मेरा प्रेम कोअी आज कल की चीज़ तो है नहीं, शर्मिला ! कअी साल से—तू नन्हीं सी थी, तब से—मैं तेरे रूप-गुण की तारीफ़ें सुनता आया हूँ। मैं सोलह सालका था तब मैं—अुस शहर में—रहा था ना ? फिर तो वहीं काम करता रहा...."

---

१ ग़लतफ़हमी=चूक समझ

"क्या अब भी—अुस जगह—का नाम लेते डर आता है?" मैंने धीमे से पूछा।

"नहीं तो! डर काहेका? पर तेरे पिताजी को मैंने वचन दिया था, कि कभी ज़बाँ पर न तो अुनका नाम लाअूँगा, न अुनके कुल का, न अुनकी नगरी का।"

मैं हँसी। "वाहरे वचन के पक्के! और अपनी बहन बेचारी को जो वचन दिया था, अुसका क्या?"

वे भी हँसे। "मेरी बहन! अरे हाँ भअी, मैं तो अुसे भूल ही गया था! शोर मचायगी, ज़रूर! मचाने दो। भय की घड़ी टल गयी: अब मैं थोड़े ही बच्चा बन कर अुसके 'हाअु! हाअु!' से डरने वाला हूँ?.... शर्मिला!"—नाथ ने अचानक बड़ी ही तीखी निगाह मुझ पे डाली—"यह अुसका द्वेष श्री राधा से था, या—तुझ से?"

ओ मेरे भोले भाले, सज्जन स्वामी! मैं क्या कहती? सर नवा कर मुस्कुरा दी, और बस। कि व्यवहार के कअी मुआमिलों में ज्ञानी से ज्ञानी, भले से भले मर्द भी या तो अबोध बालक होते हैं, और या अंध 'वादुर[1]। अब क्या करें बेचारे! कहाँ स्त्रियों की सूक्ष्म, मृग-वेगी सूझ-बूझ, और कहाँ बेचारी गज समान भारी भड़कम पुरुष-बुद्धि।....

अिस लिये मैं मुस्कुराअी, और चुप मार गयी।

चंद [2]लम्हों बाद मैंने बात बदल कर अुस जादू भरी मुरली का

---

१ वादुर=चिमगादड़, शबपरा २ लम्हा=क्षण

ज़िक्र छेड़ा, जो कल सुनाअी दी थी। अुन्होंने बड़ी ही दिलचस्पी से बात सुनी, और धीरे धीरे सर डोलाया। फिर बोले,

"हाँ। तूने कृष्ण को सुना है।"

मेरी नब्ज़ तेज़ हुअी। "आपने अुन्हें देखा है, महाराज?"

"ना! माँने मुझसे वचन ले लिया था कि मैं अुससे दूर ही रहूँगा। पता नहीं—वे अुससे बड़ी डरती हैं! और फिर—मैं गोकुल में रहा ही कब हूँ?—"

"और अब?"

"अब? अब तो बस यहीं जड़ पकड़ ली है! तू यहाँ बस गयी ना?"

हम देर तक अिसी तरह की मीठी चर्चा करते रहे: अितनी देर तक, कि सूर्यनारायण पश्चिम की सराय में दाखिल होने लगें, और अुनके विदाअी जुलूस के बहुरंगी झंडे भी आकाश और धरती पर से अुठ जाने लगे। संध्यादेवी सियाह-सुफ़ेद दुपट्टा ओढ़ पृथिवी पर अुतरने लगीं: अुनके लहराते आँचल से शांति की [1]शबनम झरकर सारे ही विश्व को सींचने लगी। हमारे चंचल चित्त भी निद्रावश बालकों की तरह निश्चल हो रहे। अेक नफ़ीस नीरवता के शांत-मधुर प्रवाह पर हमारे प्राण बहने लगे—पता नहीं किधर को!.... कि सहसा—शून्य-तिमिर अेक जगमगाती स्वर-वर्षा से [2]झाकझमाल हो अुठा!

१ शबनम=ओसकन २ झाकझमाल=चमक-झमक

ओहो ! क्या साफ़, मंजुल, और ज्वलंत ! मानो अेक अेक सुर के अंदर अेक अेक नन्हा, ज्वाला-रंगी सितारा चमक रहा था !....और फिर वह सुनहरी वर्षा अेक बहुरंगी-रत्न-जड़ित मेघधनु बन गयी, और हमारी आँखें अुसकी चमक-दमक से अैसी तो चकाचौंध हो गयीं, कि हमने बेअिख़्तियार अपने हाथों से अुन्हें ढाँक लिया ....हम बिल्कुल मंत्रमुग्ध हो गये ! यह बूझ ही जाती रही, कि हम अुस मूसीक़ी को देख रहे हैं या सुन रहे हैं, या अुन रंगों को सुन रहे हैं या देख रहे हैं!........पता नहीं वह स्वर्गीय संगीत कब तक चला, कब ख़त्म हुआ : कि हम तो आनंद-मस्ती में बेहोश हो रहे थे, और देश काल का हमें तनिक भी भान न था।—अब मैं समझ गयी "समाधि" क्या चीज़ है ! वही थी "निर्विकल्प समाधि"—वह दिव्य बेभानी, वह [1]कामिल [2]ख़ुदफ़रामोशी, वह चेतना-पट से स्थूल जगत का साफ़ मिट जाना—वह अवर्णनीय आनंद; वह तेजोमय अंधकार, जिसमें आत्मा ने परमात्मन् से आँख लड़ा ली, और सदा के लिये जान गया "सोऽहम् !"

* * *

कल की शाम तो बस, मेरी रूह पर नक़्श हो गयी है ! कि अुस स्वर्गीय, पावन मुरली के पहले ही सुर के साथ मैंने नया जन्म ले लिया, और अमर हो गयी....

* * *

सारा कुटुंब मेले से आया तब क्या हुआ; मालती ने मुझे आज़ाद, और नाथ को अटल पाकर क्या क्या कहा और क्या क्या किया — यह सब तो—ख़ैर ! कौन याद करे ! हम स्वर्ग पहुँचे तो थे, पर स्वर्ग में

---

१ कामिल=संपूर्ण २ ख़ुदफ़रामोशी=आप-विस्मृति

कब कोअी टिका है, जो हम टिकते ? जीवन यही है ना—"बस क्या से क्या हो जाना !"

दूसरे रोज़

मैया जमुना की शीतल गोदी से, घाट की मज़ेदार चहल-पहल से मुझे कितना प्यार हो गया है, सो मैंने आज जाना, जब फिर सुबह ही सुबह में वहाँ जल भरने चली गयी। और मेरी सखियाँ ! ओ हो ! मैं सचमुच अुन्हें कितना चाहती हूँ ! अुस क्रूर कारावास के बाद खेल-कूद में कुछ अजब मज़ा आया, कामकाज में कुछ निराला लुत्फ़ ! मैत्री में अेक नयी, अकल्पित मिठास थी, हँसी-मज़ाक़ में कुछ और ही आनंद ! बहुरंगी वस्त्रों का जोबनकभी अैसा निखरा न था, फूल कभी अितने महके न थे; शीतल समीर आज हमेशा से कहीं ज़ियादा कोमल और सुखद था, और पंखियों के कंपित कंठों से वह तानें फूट फूट कर निकल रही थीं, कि बन का पेड़ पेड़ मस्ताने मूसीक़ी का अुछलता फ़ौवारा बना हुआ था ! मेरा जिस्म झूम झूम जाता था, पैर ख़ुद-ब-ख़ुद नाचने लगते थे, आँखें बार बार आनंदाश्रुओं से भर आती थीं....

घर लौटी, तो ताज़ी रसीली घास मेरे नंगे पाँव तले ठंडे मख़मल की सी थी, और निर्मल नील आकाश मुझ पे सुनहरे स्मित बरसा रहा था। मन के अुल्लास ने मेरी रग रगमें बिजली भर दी थी, गोया, और मैंने कुटिया अिस फुर्ती से झाड़ ली, गौअों को अैसा चटपट चारा दे दिया, बरतन अैसे झटपट मांज लिये, कि मेरी शांत सासूजी भी सानंदाश्चर्य से बोल अुठीं, "अरे वाह, शर्मिला ! अब तो तू सचमुच चालाक बन रही है" !

यह सब हो हुआ कर भी मध्याह्न में अभी कुछ समय बाक़ी था। अिस फ़ुरसत को [1]ग़नीमत मानकर मैंने अपना चमकता लोटा [2]ताक़ पर से अुतारा, और नाचती गाती वन में दौड़ गअी। वहाँ अेक अिमली-कुंज में अेक छोटी सी नहर बहती है, जिसने ख़ूब सुरीले और चिलकते हास्य से मेरा स्वागत किया। बस—फिर अुसका गान था और मेरा नांच !

सुबह ही अपनी सहेलियों से अेक सुंदर नया रास सीख आअी थी : मैं अुसीकी रियाज़ करने लगी। माथे पे लोटा, आंचल कस कर कटि में खोंसा हुआ, हाथों से ताली देती मैं नृत्य करने लगी : "अेक-दो-तीन-चार।" लय संभलती न थी, तो मैंने ज़ोर से मात्राअें गिनना शुरू किया: "अेक-दो-तीन-चार। अेक-दो-तीन-चार"—जो थोड़ी ही देर में "मा-आ-ध-व ! मा-आ-ध-व !" में बदल गया। लहलहाते वन की शीतल शांति, चिड़ियों की अुमंगभरी चहक, बहते पानी का मीठा कलख और हुलसित चमक-झमक, और मेरे अुभरते यौवन की तरंगें —बस ! फिर पूछना ही क्या था ?....

धप्प !!!

मेरे कंधे पर ज़ोर की थाप पड़ी, और मैं अैसी तो चौंकी, कि लोटा माथे से लुढ़क कर धड़ाम! से ज़मीन पर जा गिरा। साथ ही वन की शांति को अेक तार-सप्तकी चींख़ ने छिन्न-भिन्न कर दिया—मानो किसी

---

१. ग़नीमत=क़दर करने के लायक़ चीज़ २. ताक़=मेहराब, देवली

कच्चे बजैये के हाथों सारंगी का तार [१]ख़राशा जा रहा हो ! मैं झटके से मुड़ी, तो देखा मालती वहाँ खड़ी अपने अँगूठे को सहला रही है, और [२]ला'नतें बड़बड़ा रही है ।

दृष्ट मिलते ही वह चिल्लाअी : री तू—तू—कम्बख़्त कहीं की ! तेरे जिस्म में भूत भरा है ! जब कभी तेरे पास आती हूँ, मुझे पछताना ही पड़ता है !"

दिल में तो हमदर्दी भरी थी, पर दबी हँसी ने मेरा गला घोंट दिया । मैं करती क्या ? वह मूरत ही कुछ अैसी थी ! अेक हाथ में अेक पाँव का अँगूठा पकड़ कर, दूसरे पाँव से बेचारी मालती अेक आवेश में नाच रही थी । अुस अनोखे नृत्यने मेरा गांभीर्य नष्टभ्रष्ट कर दिया । [३]पदर मुँह पे खेंच कर मैंने क्षण भर माथा फेर लिया, फिर ज़बरदस्ती स्वस्थ होकर हार्दिक अफ़सोस से बोली :

"ससस-सच कहती हूँ, बहिन, मैं ब-बहुत ही दिलगीर हूँ ! अँगूठे में ज़ियादा चोट तो नहीं आअी ?" यह कह कर मैं झुकी, और अुसके बदनसीब अँगूठे को बड़े ग़ौर से देखने लगी, कुछ तो फ़िक्र से, कुछ तो अुससे आँख चुराने की ख़ातिर ।

"हाँ हाँ ! मैं जाननी हूँ तू कितनी दिलगीर है ! अिसी लिये तो अैसी ठुमक ठुमक नाच रही थी ना ?"

लो और सुनो ! मैं तो दंग ही रह गयी ! "मगर—म-मगर—बहिन, मैं तो तुम्हारे आने से पेशतर नाच——"

---

१. ख़राशना=रगड़ना २. ला'नत=फिटकार ३. पदर=आंचल

"बस बस ! अब बहुत हो गया ! चल, टल यहाँ से !"

"कहाँ जाअूँ ?" मैंने गड़बड़ा कर पूछा ।

"भाअी को छाछ रोटी देने, बेवकूफ़ ! और कहाँ ? चल चल, जल्दी कर ! वरना.... !

मगर मैं तो बीच-वाक्य ही भागी वहाँ से ! बग़ल में लोटा दबाय, आँचल सँभालती, कुछ चलती कुछ दौड़ती, बढ़ी तेज़ी से घर की ओर, और मन ही मन भगवान का अुपकार मानती गयी, कि अुन्हों ने आअी आफ़त अिस आसानीसे टाल दी ।

घर पहुँचते ही मेरा क़ाबू जाता रहा, और मैं फूट फूट कर हँसने लगी । रह रह कर बस वही मूरत आँखों [1]समोर आती थी—वह अेक पाँव पर फुदकती मालती, वह अुसका चेहरा, वह अुस की आवाज़ !—हायरे !....

आँखों से आँसू जारी थे, पेट में बल पड़ रहे थे, थक कर दीवार से ढलकी खड़ी थी—कि अितने में माताजी वहाँ आ पहुँचीं । मुझे अिस हाल में देखकर अचंभे से पूछने लगीं, "अरे शर्मिला, तुझे हुआ क्या है ?"

"ककक–कुछ नहीं, माताजी ! मम–मैं स–सोच रही थी, कि अगर सस–सारस न–नाचने लगे, तो कक–कैसा दिखे ?"

अितना कहते कहते मैं फिर हँसी के स्रोत में बह गयी ।

---

१. समोर=सामने

हास्य [1]चेपी रोग है। माताजी के होंठ भी फरकने लगे। [2]हैरत से अुन की ज़ुबान भी तुतला गअी।

"नन—नाचता सारस? बोलती क्या है?——अभी तेरा लड़कपन गया नहीं लगता, शर्मिला!——नाचता सारस?! हमने तो देखा न सुना!" और सर हिलाते हिलाते वे अपनी राह चल दीं।

*　　　*　　　*

ज़रा मध्याह्न हो रहा था। सब्ज़ वनों में शांति छाअी थी, गोया दिन की तपिश से थक कर सृष्टि ज़रा सुरता रही हो। गरमी से मैं भी कुछ अूब गअी थी, अिस लिये अेक बड़े, सायादार बरगद की ओर बढ़ी, जिसकी डोलती डालियाँ चौतरफ़ फैल कर गोया जगतमात्र को विश्रांति का न्योता दे रही थीं। मैं अुस तक पहुँची ही थी, कि कहीं मुरली बजी——और बस! मेरे होश—हवास गुम! मैं पत्थर सी बन गअी: दुनिया, वक़्त, अपना काम-काज——सभी से बिल्कुल ग़ाफ़िल हो गअी....

अेक दयालु टहनी ने मेरे मस्तक पे हलकी सी थाप दे कर मुझे सचेत कर दिया, और मैं तेज़ क़दम अुठाती अपने रास्ते लग गअी। पर मेरा दिल कुछ अजब तरह अेक साथ ही अुदास भी था और [3]बशाश भी; अुत्तेजित भी था, और शांत भी....

नाथ मेरी बाट जोर रहे थे, और मुझ पे नज़र पड़ते ही अुनके लबों पर वह स्मित झलका जो सिर्फ़ मेरी निगाह के लिये [4]मख़्सूस है,

---

१. चेपी=लगनेवाला २. हैरत=आश्चर्य ३. बशाश=प्रसन्न। अत्यानंदित। प्रफुल्ल ४. मख़्सूस=खास रखा या किया गया

और जिस की प्यारी ज्योत मेरे हृदय-मंदिर में लाखों करोड़ों दीपक सुलगा देती है। मैं भी दर्शनानंद से प्रफुल्ल हो गअी....

मगर मेरी खुशी क्षणिक ही थी। माथे से छाछ का लोटा अुतार नाथ को देने जो गअी, तो अहो! वह तो बिल्कुल खाली था!

देर से

शाम को जब हम रास खेलने मिलीं, तब मैंने अपनी सखियों से अिस बात का ज़िक्र किया। सब की सब मुस्कुरा दीं।

बोलीं, "कृष्ण!"

"कृष्ण? वे तो वहां थे ही नहीं!"

"पर यह अुन्हीं का खेल मालूम होता है! तूने अुस बरगद की अूँची शाखों पर कुछ नज़र डाली भी थी?"

"नहीं तो! मेरे तो ख़्वाब में भी ख़याल न था!---बस मुरली बजी, और---क्या वे वहाँ होंगे?"

"ज़रूर! नटखट कहीं के!"

मैं सचमुच चिढ़ गअी।

"यह तो अुनकी बड़ी ज़ियादती है! अपने-पराये की कोअी [1]तमीज़ ही नहीं? छाछ मेरे नाथ की, और अुड़ा जायँ कृष्ण! क्या ख़ूब! हमें अैसे चोंचले नहीं भाते!"

---

१. तमीज़=विवेक

कहीं ऊपर से अेक अतिहुलसित हास्य की तान कानों पे पड़ी, और अेक वीणा की सी मंजुल, पुष्प-पंखरी की सी कोमल, स्वच्छंद बालक की सी चंचल आवाज़ बोली :

"रे सुनो तो ! सुनो तो !" (मानो कोअी मधुर-कंठी पखेरू [1]क़हक़हा मार रहा हो !) "सुनो तो अिस की बात ? ओ बावरी ! अिस वृंदावन में 'मेरा' क्या और 'तेरा' क्या ? सभी कुछ गोकुल-स्वामी कृष्ण का है, समझी ? अिस सत्य को भूले, तो कृष्ण के पास तुम्हारी याद ताज़ी करने के बेसुमार तरीक़े पड़े हैं । सावधान ! "

वह दिलफ़रेब आवाज़ धीमी और धीमी होकर शून्य में लीन हो गअी । कुछ देर तक वहाँ पत्तों की खुरखुराहट और हमारे [2]मुज्तरिब दिलों की धड़कन के सिवा कुछ भी सुनाअी न देता था । जब होश आया, तो सभों को अेक साथ आया, और अपने साथ अेक [3]जुनून सा लाया । सारा वन "कृष्ण ! कृष्ण ! ओ कन्हैया जी ! " की पुकारों से गूँज अुठा । गोपियाँ मकरन्द-मस्त मधुमाखियों की तरह दसों दिशाओं में लटपटाने लगीं । अुस प्यारे हास्य की रुपहली घंटी कभी कहीं बजती थी, तो कभी कहीं : कभी दूर, तो कभी नज़दीक .... आनंद, अुत्कंठा और निराशा से गोपियाँ पागल सी होने लगीं ।

और मैं ? क्या कहूँ ! बस अितना याद है, कि मैं अंधी और बहरी होकर [4]बेतहाशा घर की तरफ़ दौड़ने लगी । चेहरा तमतमा रहा था,

---

१. क़हक़हा मारना=ज़ोर से हंसना, २. मुज्तरिब=विह्वल ३. जुनुन=अुन्माद
४. बेतहाशा=अंधाधुंध

दिल बाँसों अुछल रहा था, और कानों में गूँज रही थी वही मोहनी आवाज़, वही रसीली हास्य-तान, वही मार्मिक, कटाक्ष-पूर्ण चेतावनी, ... और वह आख़री शब्द—

"सावधान !"

मधरात्रि !

नाथ की आँखें ज़रूरत से ज़ियादा तेज़ हैं ! वे मुझे अन्य-मनस्क देख कर मेरी बेचैनी ताड़ ही गये ! मौक़ा पाते ही अुन्होंने मुझ से पूछा, "क्या बात है, शर्मिला ?" मैं तो सब कुछ कह देने के लिये तैयार क्या, अत्यातुर थी ! पर—जाने क्यों ?—यह कम्बख़्त ज़बान तालू से चिपकी जाती थी, और जिस्म काँप काँप अुठता था। यह देख कर नाथ मुझे बाहर खैंच ले गये, और चंद्र-प्रकाशित वन-अुपवनों में से हो कर जमुना की ओर ले चले। मा कालिंदी आज जगमगाते पारे का प्रवाह बनी हुई थीं। निशादेवी शीतल पवन से पृथिवी को पंखा झल रही थीं। गगनमाता की विशाल गोदी में तेजस्वी बालचंद्र पड़े पड़े हंस रहे थे, और बहते पानी में मुठ्ठियाँ भर भर किरण-कुसुम फेंक रहे थे : पानी अुन्हें झेल कर चिलकता प्रतिहास्य कर रहा था। ग़रज़, किसी गुप्त आह्लाद के आवेश में आकर, सौंदर्य-देवता अनंत रूपों में मेरे सामने नृत्य कर रहे थे। अिस पवित्र, हुलसित वातावरण में अशांति को स्थान ही कहाँ मिलता ? मेरा दिल ख़ुद-ब-ख़ुद प्रफुल्ल हो गया : ज़बान खुल गअी, और मैंने बेधड़क नाथ को सब कुछ सुना दिया। वे ख़ूब हँसे।

"अरे वाह ! बड़ा मज़ा हुआ यह तो ! वह नटखट मुझे तो भाता है, भअी ! अैसी शरारतों में मुझे लुत्फ़ है, [1]बशर्ते कि बिल्कुल निर्दोष हो।"

" 'निर्दोष' ? हुँह ! यह कौनसी 'निर्दोषता' थी ? किसी की चीज़ चट्ट कर के अुसे दिन भर भूखा-प्यासा रखना ! "

मेरे चढ़े नाक भौं देख कर नाथ ज़ोर से हँस पड़े। फिर मुझे समझाने लगे :

"नहीं नहीं, प्रिये ! मैं कहाँ दिन भर भूखा प्यासा रहा ? ब्रज में मीठे फलों की कमी नहीं, और अुस के झरणों से तो साक्षात् अमृत बहता है....काश अिस कृष्ण से कहीं भेंट हो जाय ! अुस की मुरली ने तो मुझे अैसा मुग्ध कर दिया है, कि, अिस चाँदनी और तेरी आंखों की क़सम, जी यही चाहता है अुस के पैर चूम लूँ !"

मैं भी हँसी, और मन ही मन हरखाअी भी ! कृष्ण की यह [2]तारीफ़ मुझे प्यारी लगी। अुन की अद्भुत कला याद आते हीं अुन की और भी बहुत सारी बातें याद आ गयीं :

"और---ओ नाथ ! अुन की आवाज़ ! और अुनकी वह [3]दिलकश हँसी !—बस कान में गूँजती रहती हैं—क्या कहूँ !— "

---

१ बशर्ते कि=अिस शर्तसे कि २ तारीफ़=प्रशंसा, गुणगान

३ दिलकश=मनमोहक

नाथ ने [1]मज़ाक़ किया, "अच्छा ! अुँहूँ—ह ! रे वह तो पक्का चोर निकला ! मेरी छाछ चुराकर तेरा चित्त भी चुरा लिया ? अब क्या होगा ?"

मैंने निःश्वास छोड़ा, और मुस्कुराओ भी।—

"क्या करूँ, महाराज ? वे अैसे ही हैं—!....मैं अुन्हें कब देखूँगी ?"

नाथ ने प्रेम भरा आश्वासन दिया। "जल्द ही, मेरी प्राण ! वे अपने चाहने वालों से तो मिलते हैं ना ?"

"जी। अैसा सुना तो है...." अितना कह कर मैं ख़ामोश हो गयी। कब ? ओ प्रभो ! कब ?....

मेरे समझदार, मेरे अुदार नाथ का कहना सच है। मुझे कृष्ण से प्रेम हो गया है। या प्रेम नहीं तो—बहर हाल, अुनकी आवाज़ मेरे अणु अणु में गूँजती रहती है, और अुन की मुरली तो—रेरे ! शब्द हार गये !....

दूसरे रोज़

झमक ! झमक ! झमक ! नीली नीली विद्युत के झबकारे आखों को चकाचौंध कर रहे हैं। अखिल विश्व अेक तेजोमय नीलिमा में चकरियाँ खा रहा है। आकाश, धरती और अुन के बीच का अपार

---

१ मज़ाक़=विनोद

वायु-मंडल "ॐ!" के महानाद से गूँज और लरज़ रहा है .... मैं कहाँ हूँ? यह स्वर्ग तो नहीं? वरना यह आनंद—यह असह्य आनंद! —अिसे स्थूल जगत से क्या संबंध? और स्थूल जगत अिसे जाने भी क्या?.... पर दुनिया ही स्वर्ग हो तो?.... आज तो कुछ भी नामुमकिन नहीं मालूम होता! पृथिवी—स्वर्ग—पृथिवी पर स्वर्ग—हाँ हाँ! क्यों नहीं? जब सभी कुछ कृष्ण-मय है, और कृष्ण स्वयं स्वर्ग भी हैं, और स्वर्ग के स्वामी भी? नरक वहीं है जहाँ कृष्ण नहीं—या यों कहूँ, जहाँ कृष्ण का भास नहीं—(क्यों कि कृष्ण कहाँ नहीं है?) ....मैं नरक से छूट कर अुस अुच्चतम आनंद-गगन में [1]परवाज़ कर रही हूँ जो सदा कृष्ण के मंगलमय चरणों की खाक बना रहता है....

रे! यह मीठा अुन्माद तुझे कहाँ से लग गया, शर्मिला? "शर्मिला"? ना ना! "कृष्ण!" अब तो अुस अेक प्यारे नाम के सिवाय सभी नाम नीरस और [2]लामोनी मालूम होते हैं। कृष्ण! कृष्ण!.... आअी, आअी, प्रभो! बस ज़रा सी मुरली छेड़ दीजिये, मैं आ जाअूँगी! अिस संसार के मलीन वस्त्र को अेक बाजू फैंक कर मैंने अब भक्ति का तेजोमय श्वेतांबर पहन लिया है—बिल्कुल सुफ़ीद, पवित्र, मानो सूर्यप्रकाश में चिलकता कोअी मानस-यात्री हंस!....मैं आयी, भगवान, मैं आयी! आप के चरण-कमल से पावक प्रेम-मधु का पान करूँगी! आपकी अुज्ज्वल आँखें मुझ पै चमक कर मुझे तेजामृत में नहला देंगी, और मैं अमर हो जाअूँगी!....मेरे प्रभो! मुझे क्यों नहीं

१ परवाज़ करना=अुड़ान लगाना २ लामोनी=अर्थहीन

बुलाते ? मुरली क्यों नहीं बजाते ?....मैं आऊँगी ! मैं आती हूँ वहाँ, जहाँ भक्त-भगवान की अनादि और आनंदमय मिलन-लीला सदा चलती रहती है; जहाँ आत्म-परमात्मा का अखण्ड रास रचाया जाता है, हे रसेश्वर ! ओ कन्दर्प-दलन ! ओ मन-मोहन ! ओ परमानंद-दाता !... यह क्या था ? चिड़िया चहकी, या कन्हैया जी ने मेरा नाम धीमे से पुकारा ? वह हिरन है, या पशुरूप में मेरे छैल छबीले की सितम्नाक् आनबान ? रे बाँके मुरारि ! क्या छटा है !....यह वृक्ष है, या अिस ताँबओी, सब्ज़, और झूमते आकार में अुनकी अुमड़ती प्राण-शक्ति ?.... यह आकाश है, या पृथिवी पर तन्नाया अुनका नील-धवल तेजांबर ?.... और यह क्या हैं, यह खुल्ले-हरे, सुनहरे और सुर्ख़ रंग की चीजें, जो धूप में अिस तरह चलक-चलक कर रही हैं ? पत्तियाँ ? ना ! यह तो मुरली के बहुरंगी सुर हैं, जिन से दीनदयालु मुरलीधरने अिन पेड़ों, पौधों ओर लताओं के नग्न कलेवर ढाँक लिये हैं !...और—शर्मिला, तू क्या पागल हो गयी है, या सिर्फ़ [1]यकायक अपने होश में आयी है ?....ले सुन ! अुन की बाँसरी....आयी, आयी, प्राणनाथ ! (अरे ! यह तो पुष्पावती, मेरी जेठी नंद, मुझे बुला रही है ! मेरी अक़्ल को हो क्या गया है ?) जी ! आयी, कृष्-बहिन !—ज़रा तो ठहरें, भगवान ! मुझे छोड़ कर कहाँ चले ? मैं भी चलूँगी—मगर अपने बाल तो ज़रा ठीक कर लूँ ?—कंघी !—कहाँ गयी मेरी कंघी ?—रे भाड़ में जाय तेरी कंघी ! कृष्ण तो तेरा दिल देखेंगे, न तेरा

---

१ यकायक=सहसा

सर !....पर माथे पे ताज़ी बिन्दिया तो होनी चाहिये ना ? अब कुंकुम नहीं मिलता !—ऊँह !—हाय रे ! मेरे कुंडल कहाँ खोग ये ?—ओ कृष्ण, कृष्ण, यह क्या कर दिया तुमने मुझे ? बस हर जगह तुम्हीं तुम दिख रहे हो !—रे रे !—और कुछ दिखता ही नहीं ! अब क्या करूँ ? कुंडल नहीं मिल रहे हैं, और नाथ नाराज़ होंगे....रे मैं तो सच-मुच पागल हुआी हूँ आज ! यह क्या, कुंडल कान में ही तो पड़े हैं ! कान—ओ पावन मुरली-मुग्ध कानो, वही दिव्य नाद तुम्हारी सच्ची शोभा है ! तुम्हें कुंडलों का क्या काम ? और ओ गोपी ! ओ कल्याणी ! तू तो सितारों से सजी है, तुझे और गहनों से क्या ग़रज़ ?....आयी, कृष्ण !—जी, माताजी ! यह आयी !

देर से

शर्मिला होश में नहीं—पागल हो गयी है ! ओ आनंद-मदीरा से छकी हुआी ! ओ सौंदर्य-धाम-गामिनी ! ज़रा संभल जा। देहभान में आ जा। नाथ तुझे बुला रहे हैं। चल, चल, चल !

और भी देर से

मुझे अिस तरह गुमसुम देख कर नाथ चिंतित हुअे। मुझे बाहर ले गये। मृदुल ज्योत्स्ना में धरती अेक [1]सुफ़ीद-पोश साध्वी बनी हुआी थी। सारे वन में "कृष्ण ! कृष्ण !" की गुंजन सुनाआी देती थी। मेरा दिल प्रति-गुँजन करने लगा : "कृष्ण ! कृष्ण !"

---

१ सुफ़ीद-पोश=शुभ्रवस्त्र-धारी

मेरा मौन टूटता ही न था। कुछ देर बाद नाथ ने ज़रा बेचैन हो कर पूछा, "शर्मिला, प्रिये, ख़ैर तो है ?"

"ओ नाथ ! ओ मेरे नाथ !—क्या कहूँ ! बस यही लगता है मैं मरकर वैकुंठ में आ पहुँची हूँ !"

"मरके क्यों, प्रिये ? वैकुंठ तो यहीं, जीते जी, मिल सकता है ! जहाँ प्रेम हो, आनंद हो, बस वहीं वैकुंठ है ना ? मरने की बात न कर ! मुझे छोड़ जाना चाहती है क्या, जो तुझे अितना दिलोजान से चाहता हूँ ?"

"नहीं नाथ ! मैं भी तो आपको दिलोजान से चाहती हूँ ! यक़ीन मानिये..."

"अीश्वर की महान कृपा !....मगर—आज मैं कुछ बेचैन हो रहा हूँ, प्राणेश्वरी। मुझे तेरी फ़िक्र हो रही है...."

"फ़िक्र, महाराज ? आप को फ़िक्र, जो मुझे अितना चाहते हैं ? फ़िक्र—!" (मैं ज़रा हँसी)—"फ़िक्र—क्योंकि शर्मिला अंधी थी, और अब सनेत्र हुअी है ? फ़िक्र, क्योंकि शर्मिला ग़फ़लत की नींद सो रही थी, और अब जाग अुठी है ? फ़िक्र, क्योंकि शर्मिला नरक से अुड़कर स्वर्ग में जा पहुँची है ? ओ प्रियतम ! अगर अैसा है, तब तो आपके प्रेम और अिस चांदनी में कोअी फ़र्क़ नहीं, जो चमकती, शीतल, अुन्मादकारी तो है, पर साथ ही स्वप्न सी अग्राह्य, और अुतनी ही अनित्य !"

नाथ के क़दम रुक गये। साफ़ नयन खेद से घिर गये, सुडौल होंठ जरा कंपित हुअे। पर अुन सा समझदार कौन होगा ? वे ताड़ गये कि मैं किसी आवेश के पागलपन में बक रही हूँ। बड़ी ही कोमल, किंतु गंभीर आवाज़ से अुन्हों ने जवाब दिया :

"मेरा प्रेम, शर्मिला, सागर का सा अथाह है, श्वेत चमेली का सा पवित्र है, काल का सा अमर है, और स्वयं परब्रह्म का सा सत्य है। और तब भी—मैं चिंतित हूँ।"

अुनके धैर्य ने मुझे अपने अन्याय का सचोट भान करा दिया। मैं लज्जा, पश्चात्ताप और प्रेम से विह्वल हो अुठी। अुनका हाथ अपने दो हाथों में लेकर मैंने अुसे सर आँखोंसे लगा लिया। फिर अत्यंत प्रेम और विनय से बोली, "महाराज, मैं बिल्कुल बेवक़ूफ़ हूँ! मुझे माफ़ करें। जाने आज मुझे क्या हो गया है!....नाथ, लीजिये सुनिये आप की पगली शर्मिला को आज क्या क्या हो गया। मगर पहिले—जान लीजिये, अुसका प्रेम भी भगवान का साक्षात्कार ही है! अब तो राज़ी हुअे ना ?"

"राज़ी क्यों न होता, जब तू मेरे पास है, और मेरी है ? अच्छा बोल अब, प्रिये : क्या हुआ ?"

तब मैंनें अपनी आत्म-कथा विस्तार से अिस तरह सुना दी।

"तो सुनिये, प्राणनाथ! आज सबेरे घाट पर आप की शर्मिला अेक अजीब आफ़त में फँस गयी। अपनी सखियों के संग जमुना-स्नान

करके अुन्हीं के [1]हमराह बाहर निकल आयी। पर जब अुनके साथ कपड़े पहनने गयी, तो अे लो! मेरा वस्त्र ही [2]ग़ायब! मैं ढूँढ़ ढूँढ़ कर बेज़ार हो गयी। मेरी सखियों ने भी हर शक्य और अशक्य जगह में शोध-खोज की, पर वह वस्त्र न मिलना था, न मिला। अब देर होने लगी: अुनके घरों में काम पड़ा था—[3]चार-ना-चार, और बड़े अुचाट दिलों से, वे मुझ से विदा हुआीं, जो अब तक अपने चीर की तलाश में ही लगी हुआी थी। और ज्यों ही ज्यों अुनके बहुरंगी आकार मेरी आँखों से ओझल होते गये, और अुनके नूपुरों की छून्-छनन् धीमी और धीमी पड़ती गयी, त्यों ही त्यों मेरी बेचैनी बढ़ती गयी—मैं अस्वस्थ होने लगी! आप समझ सकते हैं—मेरी यह दशा, और वह निर्जन स्थल! मन निरंकुश हो कर क्या क्या कल्पनाअें करने लगा: यह मालूम होता था, नदी, अुपवन, आकाश, सभी मेरी ठठोलियाँ अुड़ा रहे हैं! चिड़ियाँ मुझे चिढ़ाने लगीं, गोया; पुष्पों के स्मित में [4]ताने की छटा नज़र आने लगी; वन की छोटी बड़ी आवाज़ें अट्टहास्य का रूप धारण करने लगीं....कि सहसा मेरा वस्त्र दीख पड़ा!! सामने ही अेक डाल पे टंगा, शीतल पवन में मज़े से नाच रहा था! मैं खुशी खुशी लपकी अुसकी ओर....पर—मेरा स्पर्श होते ही वह वस्त्र रेशम का सा मुलायम बन गया! और अैसा तो चमकने लगा, मानो किसी ने अुसे पिघले सोने में रंग दिया हो! मैं हैरान—! यह क्या माजरा है? ज़रा डर भी लगा—आप ही विचार करें....!"

---

१ हमराह=साथ २ ग़ायब=अलोप ३ चार-ना-चार=मजबूर या लाचार होकर ४ ताना=कटाक्ष, व्यंग

मैं थम गयी। नाथ ने अधीरताओ से पूछा, "फिर? फिर क्या हुआ, शर्मिला?"

"मैंने अुसे झट-झट पहन लिया—वह क्या मुरली बजी, महाराज?"

"न न, प्रिये! किसी निशा-पंखी की पुकार होगी.... कहे जा, कहे जा!"

"हाँ—तो—चीर पहन लिया, गागर भर ली, और माताजी का वस्त्र नचोह लिया, जो धोने के लिये घाट पै ले गयी थी। फिर तेज़ीसे घर की राह ली। रास्ते में अेक सुंदर ऊँचा पेड़ आता है, जिस के नारंगी फूल दिन को [1]शो'लों की तरह भड़कते हैं। दूर से वह अेक प्रचण्ड कर-दीपक सा चमक कर राह को रौशन कर देता है। आप को याद होगा?—तो बस, अुसी पेड़ के क़रीब पहुँचते ही मेरे पाँव भारी भारी हो गये, गोया अुनमें सीसे के जूते पड़े हों: ज़मीन से अुठते ही न थे! सर में चकरी आने लगी, [2]होश-हवास गुम होने लगे। फिर—गोया दूर, बहुत दूर से, किसी तेजोमय शून्य में से—अेक गहरी, सुनहरी आवाज़ कानों पै पड़ी: 'शर्मिला!' मैं जान गयी यह कृष्ण हैं: अुसी क्षण मेरा सारा डर [3]काफ़ूर हो गया। मैंने साफ़, स्थिर आवाज़ से जवाब दिया:

" 'हाज़िर हुअी, प्रभो!'

---

१ शो'ला=ज्वाला २ होश-हवास=सुधबुध ३ काफ़ूर होना=भाग जाना, ग़ायब होना

“ ‘अब मुझसे प्रेम हो गया, शर्मिला? आँखें मेरे दर्शनों के योग्य हो गयीं?’

“ ‘यह तो आप जानें, प्रभो!’

“ ‘हाँ। मैं जानता हूँ....और तेरा हृदय-मंदिर साफ़ सुथरा होकर, तेरे प्रभु की मूर्ति की प्राण-प्रतिष्ठा के लिये तैयार हो गया है?’

“मैंने फिर क़रीब क़रीब वही जवाब दिया, ‘यह तो, प्राणेश्वर, आप ही जानें!’

“ ‘हाँ। मैं जानता हूँ। बस तो अब तैयार हो जा, शुभे, तुझे अपने अीश्वर के दर्शन मिलनेवाले हैं!’

“और फिर—और फिर—मानो आकाश में अेक नील सूर्य अुगा, और सारा ही ब्रज रौशन-रौशन हो गया! मेरी आतुर आँखों के सामने अेक दिव्य आकृति प्रगट हुअी—सुंदर! सुंदर! अुफ़! पर क्या ग़ज़ब की सुंदर!—ओ नाथ!—” वाणी हार गयी। अुस स्मृति मात्रने मुझे आपे से बाहर कर दिया। शरीर रोमांचित हो अुठा, माथे पे प्रस्वेद के बिंदु निकल आये। नाथ के सीने में मुँह छिपाकर मैं ज़ार ज़ार रोने लगी। वे देर तक मुझे योंही पकड़े खड़े रहे। बोले अेक शब्द भी नहीं, बस मेरी पीठ और सर पे हलके हलके हाथ फेरते रहे। और अुनके शरीर में भी मुझे अेक सूक्ष्म कपकपी महसूस होती थी....

आख़िर मैं कुछ संभली, और क़िस्सा आगे बढ़ाया:—

"और—और फिर मेरी आँखों के सामने उस [1]मुजस्सिम [2]हुस्ने [3]रब्बानी की [4]तजल्ली तेज़, और तेज़, और तेज़ होती गयी—यहाँ तक कि मेरे सन्मुख जो रूप खड़ा था, सो नखशिखांत केवल नेत्रनाशी नीलतेज का बना हुआ था—मानो भभकती नील विद्युत से अेक सर्वांग, अेक संपूर्ण-सुंदर मानवाकार घड़ा गया हो ! मेरी आँखें बंद हो गयीं, साँस घुट गया, मैं लरज़ती लरज़ती घुटनों पे ढकल पड़ी, और अपनी घायल आँखों को बाँहों से ढाँक कर पुकार अुठी,

" 'बस बस बस, ओ अनुपम ! ओ तेज के भी तेज ! ओ सौंदर्य के भी सौंदर्य ! अब नहीं सहा जाता ! यह आँखें तेरे नूर से अंधला गयीं—यह दिल तेरे [5]दिलशिकन हुस्न से चूरचूर हो रहा है ! अब तो दया करो, भगवन !....रे रे ! यह असह्य आनंद मुझे मार डालेगा !'

" 'भले !' (अुस मोहक आवाज़ में ज़री सी हास्य-लहरी अुठी ।) 'री तू तो बहुत जल्द हार गयी !' (फिर कुछ गंभीर होकर), 'देख, शर्मिला—अब अुसे देख ले जिसे आज से तू अपना सखा, अपना आश्रयस्थान, हर दुःख में अपना मददगार—(क्योंकि दुःख तो किसी को नहीं छोड़ता)—अपना गुरु, हाँ, और अगर तुझे सच्चा प्रेम है, तो अपना बेदाम चाकर भी मान सकती है !'

---

१ मुजस्सिम=मूर्तिमंत २ हुस्न=सौंदर्य ३ रब्बानी=दिव्य ४ तजल्ली=नूर, तेज
५ दिलशिकन=दिलतोड़

"मैंने डरते डरते आँखें खोलीं, और माओ जसोदा के दस-वर्षीय पुत्र, कृष्ण, की अनुपम आनबान और अद्भुत रूपलावण्य के प्रथम-दर्शन किये। अुनके विशाल, सियाह नयन नूर के झरने बने हुअे थे, और मुझ पे प्रेम बहा रहे थे। (अुन्हें देख कर मैं समझ गयी कन्हैया जी को 'कमलाक्ष' क्यों कहते है।) अुन के सर्वांग-सुंदर जिस्म का रंग बस कुछ अवर्णनीय ही है! अेक नाज़ुक, अतिकोमल, तेजोमय नील-श्याम, जिसकी सही अुपमा अिस जगत में मिल ही नहीं सकती। अुनके रोम रोम से अेक मीठी, महकती शांति झरती रहती है, जिस के [1]दायरे में आकर अविद्याग्नि का सर्वथा नाश हो जाता है। अुन की नज़दीकी से मैं [2]सर-ता-पा अेक सुखद शीत से भर गयी। अुन के नाज़ुक, हुस्न से भी [3]हसीन लबों पर अेक अति मोहक मुसकान खेल रही थी, जो मुझे प्रेम और हर्ष से विह्वल बनाने लगी। वे मेरी ओर झुके, तो अुनके मुकुट में लहराते मोर-पंख में से सहस्त्र-रंगी चिलकाट निकली। बड़े ही प्यार से, बड़े ही आदर से अुन्होंने मुझको अुठाकर खड़ा कर दिया। मेरा दिल अेक अनामी [4]वज्द में आकर नृत्य करने लगा, और मेरा अणु अणु अेक अथाह, अेक अनंत प्रेम-सागर में ग़र्क हो गया।

" 'अच्छा! अब कुछ शांत हुअी, गोपी? अब तो राज़ी है ना?'

" 'जी महाराज!'

" 'ठीक है। और मुझको सखा मानेगी?'

---

१ दायरा=घेरा, हल्क़ा २ सर-ता-पा=सर से पांव तक ३ हसीन=सुंदर ४ वज्द=आनंदावेश

" 'सर आँखों पर, दीनबंधो !'

" 'और संकट में राखनहार !'

" 'जहाँ निरंतर आप ही का ध्यान बना रहे, ओ त्रितापहारी ! वहाँ संकट हो कहाँ से ?'

" 'ठीक है ! और, शर्मिला, अपने भगवान के नाते मेरा स्वीकार करती है ?'

" 'बेशक, बेशक, प्राणनाथ ! वह तो आप हैं ही ! और कब नहीं थे ?'

"बस अितना कहना था, कि वे अजब मिठास से मुस्कुराअे, मेरे हाथ का हल्का सा, अति, अति-कोमल स्पर्श किया, और—मैं तन्हा थी ! मगर तन्हा कहाँ ? मेरे हृदय-मंदिर को अुन्होंने जब स्वीकार लिया, तो अब अुनकी तेजोमय मूर्ति वहाँ सदाके लिये स्थापित हो गयी है....

"और अब, नाथ, मेरे कानों में वही दिव्य आवाज़ गूँजती रहती है और यह सारा ब्रज-मंडल अुसी हुस्ने [2]बेनज़ीर का [3]अरीसा मात्र बन गया है—अैसा [4]कामिल हुस्न, कि पृथिवीतल-वासी अपूर्ण मनुष्य अुसकी स्वप्न में भी कल्पना नहीं कर सकता। और मेरा दिल—आह ! अिस सीने में अब दिल है कहाँ ?"

---

१ सर आंखों पर=बड़ी खुशीसे २ बेनज़ीर=अनुपम ३ अरीसा=दर्पण ४ कामिल=संपूर्ण

बहुत, बहुत देर तक कोअी कुछ न बोला। फिर नाथ की धीमी आवाज़ कान पे पड़ी :

"और मेरा क्या, शर्मिला ?"

मैं चौंकी। फ़ौरन्, और [1]पुरजोश लहजे में मैंने जवाब दिया,

"प्रियतम, मैं आप को अब जितना चाहती हूँ, अुतना कभी, कभी, हाँ कभी नहीं चाहती थी !"

"क्या ? ! !"

"ओ नाथ ! ओ नाथ ! मैं कैसे समझाअूँ ? सिवाय कृष्ण-भक्तों के, यह [2]राज़ कोअी नहीं समझ सकता !"

"मैं तो यक़ीनन् नहीं समझ सकता ! और—मुझे डर आता है ! ओ शर्मिला, शर्मिला, मुझे बड़ा डर आता है !" अुन का जिस्म लरज़ अुठा : अुन्होंने दोनों हाथों से अपना मुँह ढाँक लिया।

मेरे दिल पे बरछियाँ पड़ गयीं। दो तीव्र, विरोधी भाव मेरे चित्त की चीर-फाड़ करने लगे। अेक तरफ़ परमानंद का हिलोरे मारता अमृत-सागर, दूसरी तरफ़ असह्य दुख की दहकती ज्वाला ! मुझे अिन्सान के दिल का ज्ञान ही क्या था ? मैंने तो यही समझा था, कि अुस अद्भुत अनुभव का बयान कर के मैं नाथ को भी अपने आनंद-स्वर्ग में खींच ले जा सकूँगी:—पर यहाँ तो क़िस्सा कुछ और

---

१ पुरजोश=तीव्र भावना से भरा हुआ २ राज़=गुप्त भेद

ही था ! हृदय विल्विला अुठा—"हाय, प्रभो ! मुझ पर यह कृपा, और मेरे नाथ पर क्यों नहीं ?" मैंने बड़े जतनों से अपनी घबराहट की रोक-थाम करते हुअे, अति गंभीर स्वरों में जवाब दिया :

"मेरे हृदयेश्वर ! मुझसे आँख मिलाअिये, और मेरे हर शब्द को खूब ध्यान से सुनिये । और मेरी जिह्वा से असत्य की छाया तक निकली, तो कृष्ण करें यह आँखें फिर से कभी, कभी अुन के दीदार से पावन न हों, और यह शर्मिला सदा के लिये घोर नरक में जा बसे ! मैं सच्चिदानंद-स्वरूप परब्रह्म परमात्मा को साक्षी रख कर कहती हूँ—जो आप के प्रति शर्मिला का प्रेम श्री सीताजी की राम-भक्ति के समान पवित्र न होता, सागर का सा गूढ़ न होता, और महाकाल का सा अनंत न होता, तो वह कभी, कभी, कभी श्री कृष्ण की भक्ति करने के लायक़ न बन सकती !

"और अगर अुस का हृदय कृष्ण प्रेम से शुद्ध, निष्कलंक न बन गया होता, तो वह आप के चरणों में हरगिज़, हरगिज़ अुस दिव्य प्रेम की भेंट न धर सकती कि जिस के आप सर्वथा अधिकारी हैं ! स्वामिन्, मुझे कुछ आप के देह का मोह नहीं ! मैं तो आप के ज्वलंत आत्मा की अुपासक हूँ : आपकी नेकी, आपकी मिठास, आपके आत्म-विश्वास और हृदयबल की । मैं आपके अलौकिक गुणों पर वारी जाती जाती हूँ, मेरे हृदय-स्वामी ! मैंने आपको शूरवीर पाया है; निर्दोष, बुद्धिशाली और कुशल पाया है । आपका सा प्रेमल हृदय मैंने कहीं नहीं देखा ! आप की प्यारी सादगीने मेरा मन लुभा

लिया है ! मैं आप को अटल सत्प्रेमी, और अमृत्य का कट्टर वैरी जानती हूँ। आपकी सुदृढ़ अेकनिष्ठा पर मुझे बहुत नाज़ है !

"महाराज ! ज़रा विचार कीजिये। यह सारे ही सद्गुण क्या हैं ? कहाँसे आये ? अिस पंच-महाभौतिक काया के काले कीच में लहलहाते यह श्वेत, पवित्र, सुगंधित, तेजोमय कमल क्या हैं ? मेरे नाथ ! यह सारे के सारे आप के हृदय में छिपे हुअे, अपार गुण-सागर श्रीकृष्ण के आकार ही हैं ! सब ही, सब ही कृष्ण हैं ! सब ही कृष्ण हैं !"

मेरा साँस तेज़ी से चल रही थी, पर मेरी आँखें दृढ़ता से अुन की आँखों पे जमी हुअी थीं। ज्यों ही मैं ख़ामोश हुअी, कि शून्य को चीरती अेक लंबी मुरली-तान हमारे कानों में गूँजी, और चमकते खंजर की तरह हमारे दिलों में खुप गयी। हमारे चित्त काँप अुठे, आँखों में आंसू कूद आये, शरीर पुलकित हो गये, अंग अंग किसी दिव्य अगन से तपने लगे ! सो यहाँ तक, कि हमारे वस्त्र पसीने से [1]तरबतर हो गये ?....और फिर बारीक, बारीक और बेहद नाज़ुक खटके और मूर्छनाअें हमारे अणु अणु को नचाने लगीं : बस अेक दमकती स्वर-वर्षा, जिसका अेक अेक [2]क़त्रा अेक अेक दलकता मोती था ! और अुस बहते, अुछलते, बल खाते, बरसते मूसीक़ी की मस्तानी लहरों में अेक अुपदेश सुनाअी दिया, साफ़—हाँ ! शुष्क और अर्थहीन शब्दों से कहीं साफ़ !—जिसने मेरे पुरजोश वचनों की साख भर दी,

१ तरबतर होना=बिल्कुल भीग जाना २ क़त्रा=बिंदु

और हमारे अस्वस्थ दिलों को सदा के लिये शांत, श्रद्धायुक्त, और निश्चिंत बना दिया :—

"सब ही, सब ही कृष्ण ! सब ही, सब ही कृष्ण ! ओ मूढ़, भटकते प्राणी ! जान लो ! मान लो ! सब ही, सब ही कृष्ण ! जान लो ! मान लो ! भगवान को पहिचान लो ! ओ मोहवश, ज्ञानहीन, अंध प्राणियों ! त्यागो अहंकार ! यह चित्त अंधकार ! क्या है यह संसार ? सब ही, सब ही कृष्ण ! कृष्ण ! सब ही, सब ही कृष्ण !"

और जब हमें फिर होश आया, तो हमने अपने को ज़मीन पर दुज़ानू पाया, हमारे कंपित हाथ जुड़े हुअे, हमारे गाल शीतल आँसुओं से तरबतर !........

नाथ ने लंबी साँस खींची, गोया गहरी नींद से जाग रहे हों। फिर बोले :

"अब आखिर मैं तेरी बात समझ गया, शर्मिला !"

मेरी बशाश आँखों के सामने रात मध्याह्न की सी रौशन हो गअी !

पंद्रह रोज़ बाद

जीवन अेक दिव्य सपना बना हुआ है, जिसका प्रत्येक दिन काल के रेशमी डोरे में पिरोया हुआ अेक अेक बहुरंगी रत्न है; जिस की हरेक रात अेक पावन मंदिर है; जिसमें हृदयेश्वर भगवान का

आह्लादक वास सदा विद्यमान रहता है। श्री कृष्ण ने तो हमारे जीवन में कुछ अजब जादू भर दिया है! दिन भर बस आनंद, आनंद! कभी गान है, तो कभी नाच; कभी हास्य-विनोद या खेलकूद है, तो कभी आँसू, अुसाँस व आहोज़ारी[1]!—मगर हमेशा, अचूक, अेक गूढ़, अलौकिक, आध्यात्मिक रस तो सारे जीवन में बहता ही रहता है।....

कन्हैया जी की शरारतों से तो, बाबा, हाथ जोड़े! कोअी हद भी है? नाक में दम, दम कर देते हैं! अुन के रूप-चांचल्य का तो कहना ही क्या? राम राम! हे राम! अैसे तो बहुरूपिये हैं, कि कभी कभी तो स्वयं श्री राधाजी धोखे में आ जाती हैं! फिर हम तो किस बिसात में हैं? हमें चक्कर में डाल कर निष्ठुर मुरारि राज़ी राज़ी हो जाते हैं! (और—हमें भी अपनी हार जीत से कहीं ज़ियादा प्यारी मालूम होती है!) बड़ा मज़ा है, सच! कभी कभी वे ठंडी पहर को आ जाते हैं, और मुरली पर सुंदर सुंदर राग बजाते हैं। हम गोपियाँ अेक मेक के हाथ पकड़ अुनके अिर्द-गिर्द नाचती हैं। कभी वे दिख कर छिप जाते हैं, और जब अुनकी खोज में घने घने निकुंजों की [2]खाक छान छान कर हम थक और हार जाती हैं, तो अैलो! कहीं अूपर से पुष्प-वृष्टि होती है, और मुँह अुचक कर जो यहाँ वहाँ देखती हैं, तो मोहनजी किसी अूँचे, सघन वृक्ष की डोलती डाल पे झूमते, और खूब खिलखिला कर हँसते नज़र आते हैं! कभी हम बैठी

---

१ आहोज़ारी=रोना धोना, हायबाय २ खाक छानना=किसी जगह में घुमते रहना, कोशिश करना

अुन्हींका गुणगान, या अुन्हींके बतलाअे किसी तत्त्वपर चर्चा करती होती हैं, तो वे सहसा हमारे बीच प्रकट होकर अपनी बंसी पर अेक लंबी तान बजा देते हैं, और हमारी सुधबुध हर लेते हैं। कभी कभी वह चंचल, चुलबुली बंसी सभी दिशाओं में बजने लग जाती है, गोया, और कोअी गोपी कहती है, "वहाँ बजी!" और कोअी, "ना ना! अिस तरफ़ बजी!" और कोअी तीसरी," तुम दोनों कर्ण-भ्रांत हुअी हो क्या? सुनतीं नहीं? साफ़ अुस तरफ़" (कहीं और ही अिशारा करके) "से तो आ रही है!" बस! फिर चला झगड़ा! हरेक गोपी कुछ जुदा ही कहती है, और हरेक गोपी अपनी ही मान्यता पर अड़ बैठ कर, हरेक दूसरी गोपी के खंडन-मंडन में दिलोजान व ज़ोरोशोर से लग जाती है! ओहो! क्या दौड़म दौड़! क्या चींख़-पुकार! यह तूफ़ाने बदतमीज़ी जब हद को पहुँच जाता है, तो छननननननन-छन्न! से कृष्ण अुन के बीच में फाँद पड़ते हैं, और किसी का लोटा झपट, किसी की पुष्पमाल चुरा, किसी के तुलसी-पत्र हरा—अलोप! और वह बेचारी चींख़ती चिल्लाती, कोसती डाँटती, और, फ़ुज़ूल का [1]मातम-विलाप करती रह जाती हैं! ख़ास कर के अुस नटखट को भेख बदल कर हमें अुल्लू बनाने में बड़ा लुत्फ़ आता है। अुसे कौन पहुँचे? मुझको तो कअी बार अुन्होंने बहकाया है। जैसे अुस रोज़, जब मैं बाहर बैठी बरतन माँज रही थी। अेक छोटा सा लड़का आकर कहने लगा, "माधव गौली की पत्नि, शर्मिला, कहाँ मिलेंगी?" मैंने कहा "क्यों?

---

१ मातम=रोपीट

कुछ काम है ?" वह हँसा। "नहीं जी! काम काज विना ही हम अितनी दूर टांगें घसीटते आये हैं!"

"तो कहो। मैं ही शर्मिला हूँ।"

"अच्छा! तो पहले ही क्यों न बता दिया? हमें माधव गौली ने भेजा है।"

"अैसा? क्यों?—सब खैर तो है?"

"हमें क्या पता? हमें तो आप को अुनतक पहुँचा देना है—बाकी वे जानें और आप जानें! चलिये। अुन्हें आप से काम है।"

वस! मैं अुठ खड़ी हुअी, और बासन-कूसन वहीं पटक कर, तेज़ी से अुस लड़के के पीछे-पीछे बन की राह ली। अेक कुंज में वह तो कहीं [1]ग़ायब हो गया, और मेरे नाथ दीख पड़े!

"अरे शर्मिला! तू यहाँ? मैं तेरे ही पास आ रहा था! किसीने कहा तुझे मेरा काम है!"

"मुझे आप का?—? पर मुझसे तो कहा—आप को—! वह लड़का कहाँ गया?" मुझे सहसा शंका हुअी। मैंने बहुतेरा ढूँड़ा, पर वह लड़का फिर से दिखा ही नहीं। नाथ हँसे। "प्रिये! फ़ुज़ूल है। यह तो कृष्ण हमें बना गये!" फिर वे अपने रास्ते चले, मैं वापस घर लौटी।

---

१ ग़ायब=अदृश्य

शाम को घर आये, तो कुछ अस्वस्थ थे।

" शर्मिला, मेरे ढोर खो गये !"

मैंने घबराकर पूछा, "सब के सब ?"

"अेक अेक ! कहीं पता ही नहीं चलता !"

मालती वहीं थी। बोल अुठी, "रे तुमने भांग चढ़ाअी है ! ढोर क्या खोअे हैं—अभी पूरा घंटा नहीं हुआ, कि तुम ही तो अुन्हें घर ले आये थे !"

नाथ चिल्लाये, "मैं ? मैं लाया था ?" और सरपट दौड़े गये गोशाला की ओर। चंद ही घड़ियों में खूब हँसते हँसते वापस आये।

"तेरी बात ठीक तो थी, मालती ! सब वहीं हैं। अरे, यह कृष्ण !"

मगर मालती की हठ थोड़े ही अैसी आसानी से छूटने वाली थी ? "भअी तुम लोग तो मुझे सिड़न बना कर छोड़ोगे ! यह क्या 'कृष्ण कृष्ण' की रट लगाअी है ? या तो तुम पागल हो, या तो मैं पागल हूँ। और मैं तो यक़ीनन् पागल नहीं ! अिस लिये—"

"मगर मालती !—"

"भअी मुझे भी कुछ कहने दोगे, या आप ही चख़-चख़ किये जाओगे ?-सुनो मेरी बात। कृष्ण-वृष्ण कुछ नहीं : तुम ही आये थे ! क्या मेरे आँखें नहीं ? क्या मेरे कान नहीं ? जो अपने सगे भाअी, या

अुस की आवाज़ को पहिचान न सकूँ ? अरे बाबा, तुम ही आये थे ! और तुमने मुझसे कहा भी, कि तुम लक्ष्मण गौली से मिले थे, और अुसे गौअें खरीदनी हैं, और तुमने मौका पाकर वहीं के वहीं अुससे बोली कर भी ली। बस ? अब तो मेरी बात मानोगे, या अब भी 'कृष्ण कृष्ण' आलापने चले जाओगे ? 'कृष्ण !' हुँह !"

पर नाथ का ध्यान तो अुसके अेक वाक्यपर लग गया था।

"मैं—? मैंने—? ओ हो !"

अितना कहकर वे खामोश और खूब ही विचारमग्न हो गये। मगर दूसरे रोज़ वे तड़के ही तड़के घरसे निकल पड़े, और जब वापस आये, तो हमें खुश-खबरी सुना दी कि "आज तो मैं खूब ही सौदा कर आया हूँ ! लक्ष्मण गौली गोकुल का सब से प्रसिद्ध और धनाढ्य गौली है, अिस लिये मैंने अुस पर ज़रा भी तरस न खाया ! और—शर्मिला ! कृष्ण की ज़ाहरी शरारत असल में अिनायत ही ठहरी, क्यों ?"

पिताजी, जो अब तक चुपचाप यह सब कुछ सुनते रहे थे, अब कुछ सोच-सोच कर बोले, "यह कृष्ण कुछ अितना दुष्ट भी नहीं ! जी ?" और आकाश पे आँखें जमाकर अपनी नाक खुजलाने लगे।

---

१ अिनायत=अुपकार

और अभी अेक ही हफ़्ते की बात है, कि मैं ब्रज में फूल चुनती चुनती अेक झरने के पास जा पहुँची। वहाँ अेक बुढ़िया बैठी बैठी माला जप रही थी। मैं अुस से बातों में पड़ गअी। कुछ देर बाद अुसने पूछा, "तू कौन है, सुंदरी?"

मैंने कहा, "मेरा नाम शर्मिला है, माताजी, और मैं माधव गौली के घर से हूँ।"

"हाँ! समझी! और मंडलेश्वर—" (अुसने मेरे कान में मेरे पिता श्री का नाम फूँका)—"की छोरी?"

मैं चौंकी। मेरा दिल अुछल पड़ा।

"ओ माताजी, क्या आप अुन्हें जानती हैं? आपने अुन्हें देखा है? वे सब कहाँ हैं? किस हाल में हैं? और मेरी माँ? और छोटा भैया? और—"

"अै चुप, चुप! शोर बकोर न कर! कोअी सुन पायगा, तो किसी की ख़ैर नहीं....तुम बच्चे भी अजब सर-फिरे हुआ करते हो! कुछ ठिकाना है? संतों का क़ौल है, 'जवानी अधीर, और बुढ़ापा गंभीर।' बिल्कुल सच है! मेरे महात्मा पति यही कहकर बच्चों को चपत लगाया करते थे—" अुसने लंबा निःश्वास छोड़ा, और कुछ बड़बड़ाती, मिन्मिनाती, धीमे धीमे अपने तलवे सहलाने लगी। फिर सर खुजलाया। फिर झरने से पानी

पीन लगी। फिर कहीं से अेक पुराना, सड़ा सा बटवा निकाल पान लगाने लगी....मैं अधीराअी से [1]पेचोताव खाती, मुठ्ठियाँ घट बाँध कर, दाँत पीस कर ख़ामोश बैठी रही। विचार आया, "भगवान! क्या आप मुझको धीरज सीखा रहे हैं?" और मुस्कुरा दी। अुसी दम अुस माअी को कुछ तरस आया, और वह बोली:

"हाँ। तेरे माता पिता, छोटा भैया वग़ैरा सब भले चंगे, सही-सलामत, खाते पीते हैं। कोऽऽअी चिंता नहीं! तुझे हरदम याद करते रहते हैं। मैं अुन्हीं के गाँव से आ रही हूँ। अुन्होंने मुझसे कहा था, शर्मिला से मिलना, अुसे ख़ूब ख़ूब आशीर्वाद देना, और कहना ज़रा भी चिंता न करे, और ख़ुश रहे।"

मैं आनंद से विह्वल हो अुठी। "ओ मा! ओ मा! मैं तुझ पै वारी जाअूँ! तेरे मुँह में शकर! तेरी बलाअें ले लूँ! भगवान श्री कृष्ण तेरा सदा, सदा कल्याण करें!"

मगर वाह रे! अिस पर तो बड़ी बी बिगड़ बैठीं! अभिमान से माथा अुछाल बड़ी शान से फ़रमाया, "कृष्ण? कृष्ण कौन? वह कौन आया है, मेरा कल्याण करने? मैं अुसे जानती नहीं: मुझे अुसकी ग़रज़ नहीं!"

मैंने धीमे से अुत्तर दिया, "भाअी, कृष्ण की ग़रज़ तो सभी को होती है—फिर हम जानें, या न जानें।"

---

१ पेचोताव खाना=अधीराअी या कोप के मारे आपे से बाहर होना

"बस बस ! मुझसे रिग-झिग न कर। अेक बार कह दिया सो कह दिया। हम तो 'अहं ब्रह्मास्मि' वाले हैं, इमें किशन फिशन से क्या मतलब ?"

"ओ माओी !—अफ़सोस !" धृष्टता होगी, मगर—सच कहती हूँ !—मुझे अुस बेचारी पै तरस आ गया। वह मेरा भाव ताड़ गअीं, और झुँझला कर बोलीं।

"क्या ? क्या ? ! तू मुझ पै दया खा रही है ? [1]गुस्ताख़ कहीं की ! मैं तो तेरी नानी दादी होने के लायक़ हूँ ! देखती नहीं ?"

मैंने विनयपूर्ण दृढ़ता से जवाब दिया, "माताजी, आपकी चरण रज मेरे माथे पर ! आप मेरी बुज़ुर्ग हैं, अिसलिये ज़ुरूर मुझे पूज्य हैं, मगर—क्षमा करें, मा !—भक्ति को वय से क्या संबंध है ? और जिसे भक्ति नहीं, वह क्या दया का पात्र नहीं ?"

अब तो वे ख़ूब ही [2]बिफरीं !

"चल चल ! मैंने सुना था कि आज कल की ग्वालिनें भी पण्डिताअी करने लगी हैं, पर मानती न थी। आज देख लिया। लोग कहते हैं यह द्वापर युग है, पर मुझे तो सारे कलि के ही लक्षण नज़र आ रहे हैं ! तूने कुछ शास्त्र-वास्त्र भी पढ़े हैं, या यों ही मियाँ मिट्ठू की तरह चांअीं-चांअीं किये जाती है ?—नहीं पढ़े ? वाहवा ! [3]जहालत

---

१ गुस्ताख़=धृष्ट, बदतमीज़ २ बिफरना=बिगड़ना, चिढ़ना ३ जहालत=अज्ञान, अविद्या

और [1]बदतमीज़ी की क्या खूब जोड़ी जुती है ! ज़रा शास्त्र पढ़ ! भेजा ठिकाने आ जायगा।" और मुझ पे पीठ फेर कर, वे फिर माला जपने लग गओीं : मैंने हाथ जोड़ कर कहा—

"मा, मुझसे गुस्ताखी हुआी हो तो माफ़ करें। मगर—भक्ति कोआी खास शास्त्रीय विषय तो है नहीं, और न तो कोरे शास्त्राभ्यास से अुसका अुदय ही हो सकता है....?"

"बस चुप कर, [2]बेहया ! बहुत हो गया ! तू मेरी गुरानी कब से बनी है ? जानती है मैं कौन हूँ ? मेरे पति ब्राह्मण हैं, और बड़े ग्यानी ! तू मुझे क्या सिखायगी ?"

"और बेशक मेरे लिये आप पूज्य हैं, माताजी ! मगर—याद रहे—भक्ति को ग्यान की भी आवश्यकता नहीं। ग्यान भक्त की सीढ़ी है, जिससे वह अपने प्रियतम तक पहुँच जाता है। मंज़िल आ गओी, फिर सीढ़ी की क्या जुरूरत ? अिसी लिये सच्चा भक्त बनना हो, तो अिन्सान को हर चीज़ का मोह व अभिमान छोड़ना पड़ेगा—हाँ, अपने ग्यान का भी !"

"शाबाश, शर्मिला ! खूब कहा !" (आह ! अुस मोहक आवाज़, अुस मीठे हास्य को मैं खूब जानती थी !) "अब तू राह पे लग गओी, गोपी ! अेक [3]सबक़ तो तूने सीख लिया। अब दूसरा—बाकी

---

१ बदतमीज़ी=असभ्यता २ बेहया=निर्लज्ज ३ सबक़=पाठ

है !" अिन शब्दों के साथ ही वह बुढ़िया ग़ायब हो गअी, और मैं [1]तनेतन्हा अिधर-अुधर देखती और आँखें मलती रह गअी। सारे ही वन में अेक अद्भुत सुगंध फैली हुअी थी, जिस की आह्लादक लपेटों से मैं क़रीब बेहोश होने लगी....

*　　　*　　　*

"अब दूसरा—बाक़ी है !" अिस वाक्य पर मैं दिनरात मनन करती रही। यह दूसरा सबक़ कौन सा ? क्या ? अुसका विषय क्या ? कहाँ से, कैसे सीखा जाय ? आख़िर बेज़ार होकर मैंने नाथ से पूछा। वे भी मेरी ही तरह बड़बड़ा कर रह गये। अब मेरे दिमाग़ पर भूत सा सवार हो गया ! आठों प्रहर अिसी अेक [2]अुधेड़बुन में व्यतीत होने लगे। जीवन अँधेरा अँधेरा-सा लगने लगा; दिन अनंत शोध, रात्रियाँ अुस अेक सवाल का अखंड रटन बन गअीं। जवाब किसी तरह मिले ही ना ! मनुष्य-बुद्धि का आसरा छोड़ कर मैं निसर्ग से मदद माँगने लगी। चिड़ियों से पूछने लगी, वृक्षों से, आकाश से, नदी, नाले और झरनों से, पुष्पों और मृगों से—अरे, हमारी गाय तक से ! पर कोअी अिस राज़ को [3]फ़ाश करने के लिये तैयार न था। मैं चित्तभ्रांत सी हो गअी : न खा सकूँ, न पी सकूँ, न सो सकूँ—! आख़िर, गअी कल ही, भगवान ने मुझ पै तरस खाकर स्वयं मेरे सवाल का जवाब दे दिया।

वह अिस तरह।

---

१ तनेतन्हा=अकेली २ अुधेड़बुन=मनन चिंतन ३ फ़ाश करना=खोल देना

कल रास खेलते-खेलते हमारे बीच में अेक व्यक्ति चुपके से आ गअी, जिसे पहिचान कर मैं अचंभे से पुकार अुठी, "अरे—मालती !" मगर अुसी दम अेक गोपी बोली "मेरी बहन !" और दूसरी "मेरी भतीजी !" और तीसरी, "री काहेकी तेरी भतीजी ? यह तो मेरी [1]ख़ालाज़ाद बहन है !" अेक चौथी पुकारी, "री मेरी नन्ही !" मैंने बेसब्री से कहा, "तुम सभों को हो क्या गया है ? मालती को नहीं पहिचानतीं ?" और अुस की ओर देखा—तो अे लो ! वह मालती नहीं, बल्कि पुष्पावती थी, मेरी जेठी ननद ! मैं आँखें मल ही रही थी कि अेक सखी की आवाज़ सुनी, "ओ मा, तू कैसे आ गअी !" फिर दूसरी की, "ओ हो ! आज तो काकीजी भी रास खेलने आअी हैं !" और अेक तीसरी की, "तुम्हारी आँखों को क्या हुआ है ? यह तो मेरी कुसुम भाभी हैं ! बिल्कुल साफ़ नज़र आ रही हैं ! वह देखो—अुनके नये कंगन और करनफूल !" और अिस तरह वह सारी की सारी झगड़ने लगीं, और अेक मेक को भ्रमिष्ट कहने लगीं, और पागल, और झूठी, और जाने क्या क्या....

श्री राधाजी, जो ज़रा दूर खड़ी यह सारा तमाशा देख रही थीं, अब यकायक हँस पड़ीं, और तालियाँ बजा कर बड़ी ही आनबान से पुकार अुठीं, "क्योंजी, नंद कुमार ? यह क्या धूम मचा रक्खी है ? अब निज सत्य-स्वरूप दिखला दो, कन्हैया—हमने तुम्हें पहिचान लिया !"

---

१ ख़ालाज़ाद=मौसी की सन्तान

यह शब्द अुनके मुँह से निकलने ही थे, कि वह नयी गोपी अदृश्य हो गअी, और अुसकी जगह श्रीकृष्ण प्रगट हुअे—संपूर्ण यौवन में लहलहाते, कदम तिरछा, लचकीला जिस्म मंद-मंद झूमता, मुस्कुराते लबों पे मुरली, अध-मुँदे नयन लंबी-लंबी पलकों की आड़ से हम पे चिलकते हास्य-बाण छोड़ते हुअे!—क्षणभर अिस तरह, फिर श्री राधा की ओर दौड़ कर अुनके नाजुक चरण छू लिये।

"जय हो तेरी, देवी! ओ भक्त शिरोमणी! बस—तुझे दिव्य चक्षु मिल गये! अब यह कृष्ण तुझ से कहाँ, और कैसे छिप सकता है? माया का आवरण अब तेरे लिये रहा नहीं: तेरी प्रेमांजित आँखें तीर बन कर अब दृश्य के परदे को चीरती हुअी सीधी अदृश्य के सीने में जा खुपती हैं! ओ भूली-भटकी गोपिकाओ! श्री राधा के पावन चरणों में बैठकर अुनसे यह अुत्तमतर ज्ञान प्राप्त कर लो। अपनी मोहांध आँखों को विशुद्ध प्रेम-जल से धो लो, और आत्म-दर्शी बन जाओ। तुम्हारे चित्त पंचेन्द्रियों के दाम में फँसे तड़प रहे हैं—अुन्हें मुक्त कर दो! और जान लो, कि अिस अनंत सृष्टि में हर चीज़, छोटी-से-छोटी और बड़ी-से-बड़ी, अेक माया का चमत्कार है, अेक आँखों का धोखा है, अेक बृंदावन है, जहाँ छिप कर मैं सदा अपने प्रेमियों के संग आँख-मिचौनी खेलता रहता हूँ। मुझको हर चीज़ में देखना, मुझको हर भेख में पहिचानना, मुझ से हर रूप में प्रेम करना सीख लो, तो बस—बेड़ा पार है! फिर तो कृष्ण सदा के लिये तुम्हारा होकर रहेगा, और तुम आप ही कृष्णमय बन जाओगी।"

फिर, मुझ से :

"अिधर आ, शर्मिला ! दूसरा सबक् सीख लिया ?"

मैं ने धीमेसे कहा, "सीख लिया, प्रभो !" और अुनके चरणांरविंद पै मस्तक रख दिया।

दूसरा रोज़

झोंपड़ी सुनसान पड़ी है। माताजी पिताजी अेक कोने में सुसक कर बैठे अुसाँस भर रहे हैं। मालती तक खामोश है ! मेरे मन पै अँधेरी घटा छाओी हुओी है : दिल किसी सूक्ष्म, किंतु भारी फ़िक्र से गिरा जाता है। अब तो रात होने आओी—सूरज कब का डूब चुका है !—और नाथ घर नहीं आये....कभी अितनी देर नहीं करते.... क्या बात है ?....मैं अेक भूत की तरह अिधर-अुधर घूमती फिरती हूँ, कुटिया से वन में, वन से वापस कुटिया में....मेरे नाथ क्यों नहीं आते ? रे सितारो ! तुम मेरे स्वामी की [1]निगहबानी करना....ओ अनंत, सहस्राक्ष गगन ! तू अुन की सँभाल रखना....हे तरुवरगण, तुम अुन्हें आसरा देते न चूकना ! जा जा, रैन समीर ! तू अुन्हें घर की राह बतला दे....जी बड़ा ही अुचाट हो रहा है। आज सुबह अेक कोओी कुटिया पै आ कर नाथ को पूछ रहा था। बोला कुछ काम था। मुझे बिल्कुल नहीं भाया ! अुसकी आँखें बड़ी दुष्ट थीं—क्रूर—[2]मक्कार—हे मधुसूदन ! हे जगत् पिता ! आज मेरे नाथ की

---

१ निगहबानी=देखरेख २ मक्कार=दग़ाबाज़

रक्खा करते रहें—वे ज़ुरूर किसी [1]ख़तरे में हैं—क्या करूँ ! किसी तरह चैन नहीं आता....वह बजी मुरली ! चलो, मोहनजी के ज़रा दर्शन कर आयँ ।

देर से ।

शांत, सुंदर कुंज [2]गुलज़ार बना हुआ था । किशनजी अेक पेड़ को टेका लगाय बैठे थे, जिसका सुडौल गोल तना मख़मली शैवाल से [3]ख़ासा गद्दा बना हुआ था, और जो केसरी फूलों में सजा-धजा अैसा तो शोभता था, मानों संसारियों की [4]मजलिस में कोअी गंभीर, तेजस्वी संन्यासी । राधाकली का अेक झुमका अुन की कज्जल लटों को प्यार से चूम रहा था, जो मंद [5]तारिका में नील-श्याम रेशम के गुच्छों की तरह चिलक रही थीं । अुन के नाज़ुक हस्त-कमल मुरली में से जादू के फ़ौवारे अुड़ा रहे थे, और बारीक, सुंवाली अंगुली-पाँखों में से [6]नीलगूँ किरनें फूट-फूट कर निकल रही थीं । अुन की आँखें भी अैसी चमक रही थीं, मानों पुनर्वसु के तारे रात्रि के किसी भूले-भटके यात्री का विषम पंथ अुजियार रहे हों ।

मैं चुपके-चुपके अुन के क़रीब चली गअी । अुन्होंने धीमे, अति मृदुल स्वर से पुकारा, "यह तू है, शर्मिला ?—किसी मुश्किल में है । ठीक ही किया मेरे पास आ गअी ।"

---

१ खतरा=भय २ गुलज़ार=फुलवाड़ी ३ ख़ासा=अच्छा, ठीक ठीक
४ मजलिस=सभा ५ तारिका=तारों की रौशनी ६ नीलगूँ=नील-वर्ण

मैं थम गअी। "आपने कैसे जान लिया, प्राणनाथ ?"

अुनकी मीठी हँसी बहते पानी की सी ताज़ी और आह्लादक थी। "क्योंकि मैं प्राणनाथ हूँ!" फिर गंभीर होकर, "हम्म, गोपी! मेरा हृदय मेरे भक्तों के दिलों के साथ सदा अेकतार रहता है : यहाँ ज़री-सी [1]जुंबिश हुअी, और यहाँ मेरा सीना काँप अुठा....बोल अब। क्या बात है ? तेरे स्वामी अभी घर नहीं आये, क्यों ?"

"नहीं, भगवान्। और मुझे बड़ा डर आता है !"

"डर, शर्मिला ? यहाँ, गोकुल में ?....आ, मेरे पास बैठ जा.... अब बिल्कुल स्थिर हो जा........"

अितना कह कर मुरारि समाधिस्थ हो गये। मैंने अपनी आँखें अुस तेजोमय, शांत, गंभीर चहरे पर जमा दीं, और निश्चेष्ट हो बैठी। मन की शून्य-पाटी पर विविध विचारों की छायाअें झलकने लगीं। "ओ हो !....ओ सौंदर्य के ज्वलंत पूरन-चंद्र !....तू कितना शांत ! कैसा शीतल !....प्रभु के दीदार मात्र से दिल की दहक शम गअी.... मेरी आँखें दो कटोरियाँ हैं, जो अमृत से छलाछल भर रही है !....ओ मेरे भगवान् ! हे मनमोहन !...." आँखों से अेक बार ठंडे प्रेमाश्रु ढलक पड़े, और फिर सहस्रमुखी मन की सारी ही चंचल और अनथक ज़बानें अेक साथ चुप हो गअीं। शरीर [2]सुन् पड़ गया। अिस हाड़-माँस के पिंजर में फड़-फड़ाता सिर्फ़ अेक मेरा हृदय-पखेरू ही

---

१ जुंबिश=हिलचल २ सुन्=अचेत

ज़िन्दा मालूम होता था....आलम सारा दम रोके हुअे था, गोया जनार्दन की समाधि से अुसपर भी कुछ बेहोशी-सी [1]तारी हो गअी हो....

भगवान चौंके। अुनके नयन-कमल धीमे से खिले। शांत वदन पर अति-प्रेमल, अति-कोमल मुसुकान खेल गयी। शरीर में चैतन्य की बिजली दौड़ गयी। साथ ही, बन भी अपनी नींद से जाग कर सुरसुराने लगा, निशा-पंछी चह-चहाने लगे, सितारोंने अपना नृत्य जारी कर दिया। रैन-समीर किसी गुप्त शोध की धुन में फिर अिधर-अुधर मंडलाने लगा, और चुलबुली लताअें अुसकी छेड़-छाड़ से कुछ प्रसन्न, कुछ नाराज़ होकर फिर लहराने, बल खाने लगीं। और अेक मस्तानी सुवास ने जंगल को महका दिया मानों असंख्य निद्रावश फ़ूलों ने किसी प्रीतम के स्वप्न-दर्शन कर के अेक साथ आनंद-निश्वास छोड़ा हो........

कृष्णजी ने अपना गूढ़ मौन भंग किया। "सब ठीक है। डर नहीं, शर्मिले——! तेरे नाथ का हृदय स्फटिक-सा निर्मल है। अैसे साफ़ दिलों को मैं अपने अक्षय ख़ज़ाने के सर्वोत्तम [2]ला'लोगुहर मानता हूँ। ज़रा भी फ़िक्र न कर, प्रिय सखी! मैं अिस अमूल्य मणि की पुनः प्राप्ति करके अुसे अपने मुकुट में जड़ दूँगा....कल्याण!"

अितना कहकर प्रभु अंतर्धान हो गये। अब मैं बिल्कुल निश्चिंत हूँ। मेरा हृदय-पखेरू अपने पंख समेट श्रद्धा की डाल पर मीठी नींद सो रहा है। जब कृष्ण राखनहार हों, फिर किस बला का डर भला?

---

१ तारी होना=छाजाना २ ला'लोगुहर=बहुमूल्य रत्न।

दूसरी सुबह

गोकुल में आनंद, आनंद, आनंद की धूम मची है ! आकाश के अुलट नीलम-कटोरे से जगमगाती किरनें ढुली जा रही हैं । मेरा बशाश दिल पंखियों के कल्लोल से सुर मिलाकर मस्ताने भजन गा रहा है । धन्य है यह विश्व-लीला, धन्य लीलाधर—और अहो ! धन्य हूँ मैं, जो अिस स्वर्गीय घड़ी में ज़िन्दा हूँ ! रैन-तिमिर धीमे क़दमों अपने बिल की ओर सिधारा । अुषा देवी सुनहरी-गुलाबी चद्दर में लिपटी पूरब की श्वेत स्फटिक-सीढ़ियाँ चढ़ रही हैं । बस, श्री सूर्यनारायण की आमद्-आमद ही है । मैं कभी तो अुस रंग-भीने क्षितिज को देखती हूँ, और कभी मेरे प्यारे नाथ को, जो पिछली रात ही श्री कृष्ण के साथ, और बिल्कुल सही सलामत, घर आ गये ।

गगन-मंदिर की छत में झिलमिलाते अुडु-दीपक अभी बुझे न थे; पृथिवी-बालक के निद्रित मुख पर से रजनी माता का सियाह आँचल अभी खिसका न था—कि कुटिया का द्वार किसीने ज़ोर से खटखटाया । द्वार खुला । अेक प्रचण्ड नीलझमक से आँखें अँधला गयीं !....डर-डर के आँख खोली, तो अुस नूर की पृष्ठ-भूमि पर अेक बड़ी, भयानक, सियाह आकृति दीख पड़ी । मैं घबरा कर चींखी—और अुसी दम सानंदाश्चर्य से खिल-खिलाकर हँस पड़ी ! रे, वह काला देव मेरे नाथ ही थे ! मैं लपक कर अुनकी ओर बढ़ी, पर अुनके

---

१ आमद आमद=आनेकी घड़ी

अुठे हाथ ने मुझे वहीं रोक दिया; और अुन की हर्ष-गर्जना से झोंपड़ी गूँज अुठी ।

"पिताजी ! माताजी ! और प्रिय बहनो ! आओ ! अुनका पूजन करो, जिन्होंने आज रात राजा के जासूसों से मेरी जान छुड़ाअी है !"

"कहाँ हैं वे ? कहाँ हैं तेरे राखनहार ? अुन्हें भीतर तो ले आ !" यह कहकर सारे घराने ने दरवाज़े पर धावा किया ।

मेरे नाथ मुड़े, और अुन अदृश्य व्यक्ति से [1]मुख़ातिब हुअे जिन की तजल्ली रात को दिन बनाये हुअे थी ।

"ग़रीबनवाज़ ! अिस ग़रीबख़ाने को पावन करेंगे ?"

"नहीं । मैं अवांछित अतिथि बन कर कहीं नहीं जाता ।"

अुफ़, वह आवाज़ ! वह आवाज़ !—मैं क्या कहूँ ! सारी कुटिया अुन सुनहरे स्वरों से भर गयी ! और साथ ही अेक [2]होश-रुबा महक ने हमारी रही-सही सुध-बुध का भी ख़ातिमा कर दिया । अब हम मुग्ध, और गुंग........!

सब से अव्वल पिताजी सँभले । अुनकी भर्राअी आवाज़ कान पे पड़ी :

---

१ मुख़ातिब होना=बोलना २ होश-रुबा=सुधबुध-हारी

"पधारिये, पधारिये, मेरे मानव के तारणहार ! हमारे साष्टांग दण्डवत् आपको, प्रभो ! अपने शुभ दर्शनों से अिन बूढ़ी आँखों को रौशन कर दीजे, महाराज !"

तब माताजी व मेरी ननदें भी मुखरित हुअीं—"जी आअिये ! पधारिये !"

दावत पाते ही दयामय अंदर पधारे । रे अंदर क्या पधारे—यह कहिये, अुस टूटी-फूटी कुटिया में नील-सूर्य ही अुदय हुआ ! अुस तेज की झाक-झमाल से हमारी आँखों में अंधारी छाने लगी । हम अर्ध-मूर्छित होकर ज़मीन पर ढलक पड़े....अुस सुखद बेभानी के धुँध को चीर कर वही ज्वलंत, हृदय-भेदक नाद हमारे कानों पे पड़ा ।

"मुझे देख लो, मेरे प्रिय जन ! कृष्ण से डरो नहीं !"

माताजी झटके से ध्यान-भग्न हुअीं । हैरत व कुछ खिन्नता से पुकार अुठीं, "कृष्ण ? !" और झट-झट खड़ी होने लगी ।

मेरे नाथ अुन का भाव ताड़ गये ।

"हाँ, कृष्ण !" वे प्रेम भरे, गर्व भरे जोश से बोले । 'कृष्ण, जो मुझे संकट में आया जान कर, न मालूम किस तरह मेरी कुमक को आ पहुँचे ! मैं शत्रुओं की गिरफ़्त में लाचार,

---

१ कुमक=सहारा, बचाव

जमुना को पार कर के किनारे-किनारे चला जा रहा था। लड़लड़ कर पिस गया था, गोया। क़दम-क़दम पर टाँगें जवाब दे बैठती थीं.... अपनी ताक़त खूटी देखकर मैंने मन-ही-मन कृष्ण भगवान को ज़ोर से पुकारा। दीनबंधु अुसी दम वहाँ प्रगट हुअे! मैंने तो अिसी सौम्य, तेजोमय, श्याम-सुन्दर रूप के दर्शन किये, और आनंद-पागल हो गया! पर सिपाहियों ने, शर्मिला, कुछ और ही देखा! 'बाघ! बाघ! मारो! बचो! भागो!' चिल्लाकर बावरों की तरह अिधर-अुधर भागने लगे। भगवान जो अुनपे लपके, तो चारोंने दाँत पीसकर अिन पे तलवारें चलानी शुरू कर दीं। प्रहारों के वेगसे अुनकी भुजाअें रह गअीं, पर अुस मायाविक शरीर पर तनिक भी असर न हुआ! तब तो वे सबके सब चित्तभ्रांत-से हो गये। मारे [1]खौफ़के अुनके गात्र ढीले पड़ने लगे। आखिरकार जब बाहूबल ने जवाब दे दिया, और बुद्धि भी योगेश्वरेश्वर की योगमायासे दंग और निकम्मी हो गयी, तो वे [2]बदहवास होकर, अपनी तलवारें वहीं फैंकफांक कर, ज़ोरसे चीख़ते—चिल्लाते वहांसे भाग निकले। सो अैसे भागे, कि फिर अेकबार पीछे मुड़कर भी न देखा! अहो! क्या माया है! क्या लीला है! हा कृष्ण!" (गद् गद् हो कर) "मेरे प्राणों के स्वामी! आपको मेरे असंख्य प्रणाम! हे जनार्दन! हे अशरणशरण! अब अिस दासानुदास को अपने मंगलमय, पावन चरणों से दूर न कीजै! मेरे प्रभो! अब मैं सदा के लिये आपका हो गया: अब मुझे ज़्यादा न भटकाअिये, हे प्रेमसागर! हे दीनबंधो! आप ही मेरे अिष्ट

---

१ खौफ़=डर २ बदहवास=घबराहट से मूढ़

देव हैं, मेरे मालिक हैं, मेरे सर्वस्व हैं ! करुणानिधे ! अब तो मुझे अपनी चरणरज ही बना लीजे ! आपको अनेकानेक साष्टांग प्रणाम हों, भगवान !" यह कह कर वे अुस तेजमूर्ति के चरणों में गिर पड़े, और अेक मस्ती में आकर अुसके प्यारे प्यारे पाद-पंकजों को बार बार चूमने लगे ।

अब तो पिताजी, माताजी और मेरी जेठी ननद कुमारीसे भी न रहा गया । तीनों अुठे, और काँपते काँपते मुरारि समीप आये, और अुनको दण्डवत् प्रणाम किये । मालती क्षणभर दूर रही, फिर अुसने भी अुठकर शीश नवाया सही !

ज्योंही भगवानने अपने रोशन करकमल आशीर्वाद में अुठाये, कि अखिल ब्रह्मांड अेक दिव्य मूसीक़ी से गूँज अुठा, और असंख्य हर्षभरी आवाज़ें कुटिया में, और सारे ही वन में, अेकसाथ और अति मधुर स्वरोंसे यह स्तुति गाने लगीं, जिसको सुनते ही चारों दिशाओं से गोपियाँ दौड़ आअीं, और भगवानके अिर्दगिर्द खड़ी होकर अुस स्वर्गीय गुणगान में भर जोशसे शरीक हो गअीं !

"जय मुरारी ! त्रिलोकि-मोहन !
जय जय कृष्ण ! जय कृष्ण !
जय दुःखभंजन ! पाप-विनाशन !
जय जय कृष्ण ! जय कृष्ण !

अखिल सृष्टि का सर्जनहारा !
रक्षणहारा ! भक्षणहारा !

चौद ब्रह्मांड में राज्य तिहारो !
जय जय कृष्ण ! जय कृष्ण !

श्याम मनोहर, सौम्य, ज्वलंत !
तुमरी दया के रूप अनंत !
अनेक युक्ति सों जग को तारो !
जय जय कृष्ण ! जय कृष्ण !

काहुको मोहो सुंदर रूप सों,
काहुको मुरली के नाद अनूप सों ।
काहुको माया में डार [1]अुगारो !
जय जय कृष्ण ! जय कृष्ण !

काहुको जीतो भयंकर क्रोध सों,
काहुको जादूभरे, मृदु बोध सों ।
रिपु का रूप ले दुष्ट अुद्धारो !
जय जय कृष्ण ! जय कृष्ण

तव गुण अुत्तम सब ही, जनार्दन !
पर अुत्तमतर प्रेम, हे मोहन !
अचल, अजेय, अखंड, अपारो !
जय जय कृष्ण ! जय कृष्ण !

---

१ अुगारना=अुद्धार करना

जय मुरारी, त्रिलोकि-मोहन !
जय जय कृष्ण ! जय कृष्ण !
जय दुःखभंजन ! पाप-विनाशन !
जय जय कृष्ण ! जय कृष्ण !"

* * * *

और हम भी मुक्त कंठ से, प्रेमाकुल हृदयों से, आनंद-कंपित आवाज़ों से, अपनी खुदी को बिल्कुल भूल कर, सहर्ष गाने लगे :—

"जय कृष्ण ! जय जय कृष्ण !
जय कृष्ण !"

ॐ शांति: शांति: शांति:
